

दोहरी तुलन पत्र समस्या का नासूर

“सबसे महंगा व्यय तो समय का होता है”

-एंटीफोन द सॉफिस्ट,
एथेन्स, 5वीं शती, ईसा पूर्व

कुछ समय से भारत अपनी दोहरी तुलन पत्र समस्या का समाधान पाने का प्रयास कर रहा है। एक तरफ अत्यधिक ऋण लिए हुए कंपनियां हैं तो दूसरी ओर 'बुरे ऋणों' से त्रस्त बैंक। यहां एक विकेन्द्रीकृत कार्यविधि अपनाई जा रही है। बैंकों को ही पुनः रचना करने के दायित्व सौंप दिए गए हैं। किन्तु कुछ बड़ी-बड़ी कंपनियों के पास संकुलित ऋणों की समस्या का कोई निर्णायक समाधान, अनेक सुधार प्रयासों के बाद भी, नहीं हो पा रहा है। परिणाम स्वरूप यह समस्या का जख्म नासूर बनता जा रहा है : गैर निष्पादक परिसम्पत्तियां वृद्धिमान हैं, और साख तथा निवेश में गिरावट आ रही है। संभवतः अब एक नई विधि पर विचार करने का समय आ गया है। एक ऐसी सार्वजनिक क्षेत्रीय परिसंपदा पुनः प्रतिष्ठापन एजेन्सी का गठन होना चाहिए जो विशालतम एवं कठिनतम मामलों को संभाल ले और ऋण घटाने के लिए राजनीतिक दृष्टि से कठिन निर्णय लेने में भी संकोच नहीं करे।

I. विषय प्रवेश

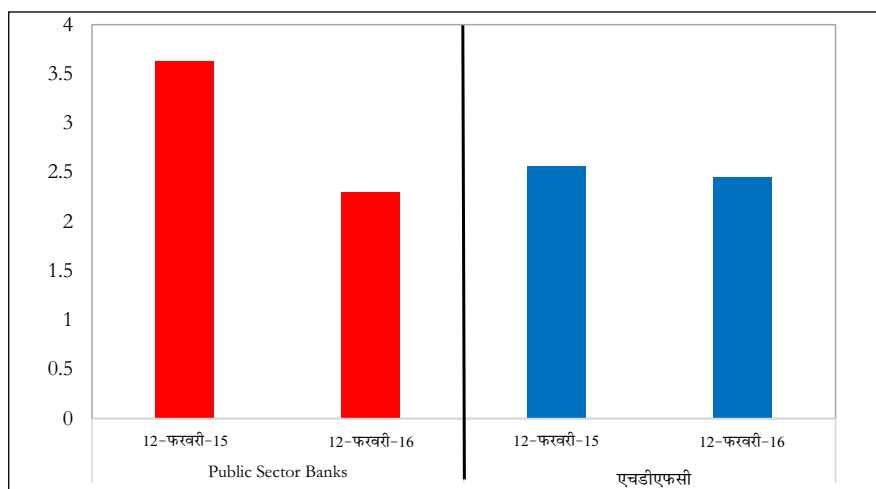
4.1 फरवरी 2016 में बैंक क्षेत्रक से मिले बुरे समाचारों से भारत के वित्तीय बाजारों में खलबली मच गई थी। दिसंबर में समाप्त तिमाही के अपने निष्पादन के आंकड़ों को एक के बाद एक सार्वजनिक बैंक घोषित करता जा रहा था और ये आंकड़े दिल दहला देने वाले थे। बैंकों ने बताया था कि निष्पादन शून्य परिसंपत्तियों का परिमाण इतना विशाल हो गया था कि उनके लिए प्रावधान के बाद सामान्य लेनदेन से संभव आमदनी शून्य प्रायः हो रही थी। अतः निवल आय तो बुरी तरह से घटा दिखा रही थी।

4.2 इस समाचार से निवेशक बहुत चिंतित हो गए और उन्होंने सार्वजनिक बैंकों के अपने शेयरों की तेजी से बिकवाली शुरू कर दी। उनके दाम इतने गिर गए थे कि मध्यम आकार का HDFC बैंक अकेले ही 24 सार्वजनिक बैंकों के सम्मिलित मूल्यमान पर अधिक भारी पड़ने लगा था (रेखाचित्र 1)।

4.3 आखिर क्या हो गया था? प्रायः निष्पादनहीन परिसंपदाएं उसी समय तीखा उछाल दर्ज करती हैं, जब देश किसी आर्थिक संकट से गुजर रहा हो और बड़े स्तर पर फर्म दीवालिया हो रही हों। पूर्वी एशिया में 1997-98 में ऐसा ही हुआ था, तो संयुक्त राज्य तथा ब्रिटेन का 2008-09 का अनुभव भी यही रहा था। किन्तु भारत में तो कोई आर्थिक संकट नहीं था, वस्तुतः भारत की जीडीपी तो विश्व की उच्चतम दर पर संवृद्धिशील थी। निगम क्षेत्र में कोई बहुत बड़ी दुर्घटना भी नहीं हुई थी, कोई फर्म दीवालिया नहीं हुई थी।

4.4 किन्तु एक स्तर पर व्याख्या बहुत स्पष्ट थी। रिजर्व बैंक ने परिसंपदा गुणवत्ता समीक्षा (AQR) की थी, उसके बाद बैंकों ने अपने खातों को 'साफ' करना शुरू कर दिया था और वर्षों से जमा हो रहे 'कूड़े कचरे' को झाड़ बुहार कर बाहर निकाल दिया था। किन्तु इससे एक बड़ा गंभीर प्रश्न उठ रहा था : आखिर इतना 'कूड़ा कचरा' जमा कैसे हो गया था? जैसे-जैसे हम वर्ष 2016 में आगे बढ़ें, यह भी साफ हो गया कि वह

रेखाचित्र 1 : बाजार पूंजीकरण : सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक और एचडीएफसी (रु. ट्रिलियन)



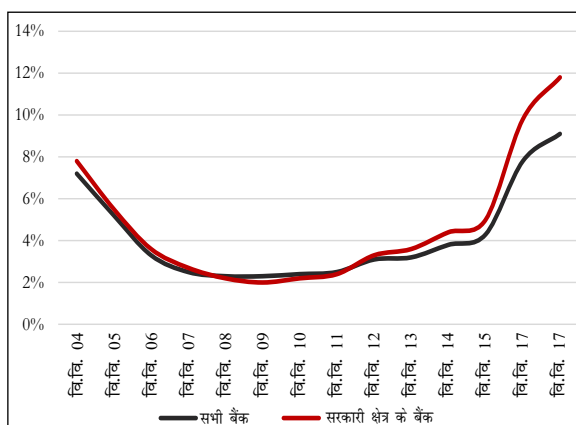
स्रोत: Bloomberg

AQR ही एक मात्र कारक नहीं था। अधिदेशित समंजन मार्च तक पूरे हो गए थे। किन्तु निष्पादनहीन परिसंपदाओं का उफान चलता रहा। सितंबर माह में उनका स्तर कुल उधार के 9 प्रतिशत को पार कर गया। यह एक वर्ष पूर्व की अपेक्षा दुगुना था। इन बुरे ऋणों का संकुलन भी इतना ही चौंकाने वाला था। निष्पादनहीन परिसंपदाओं का 80 प्रतिशत अंश सार्वजनिक बैंकों द्वारा दी गई उधार से सृजित हुआ था, उनकी निष्पादनहीनता दर तो 12 प्रतिशत को छू रही थी (रेखाचित्र 2)।

4.5 उसी समय क्रेडिट स्विस ने यह रिपोर्ट दी कि इस द्वारा अंकेक्षित 40 प्रतिशत निगम ऋणों की स्थिति तो ऐसी थी कि उन्हें लेने वाली कंपनियों की ब्याज अच्छादन दर 1 प्रतिशत से भी कम थी, अर्थात वे अपने लिए गए ऋणों पर ब्याज चुकाने लायक कमाई भी नहीं कर पा रही थी (रेखाचित्र-3)।

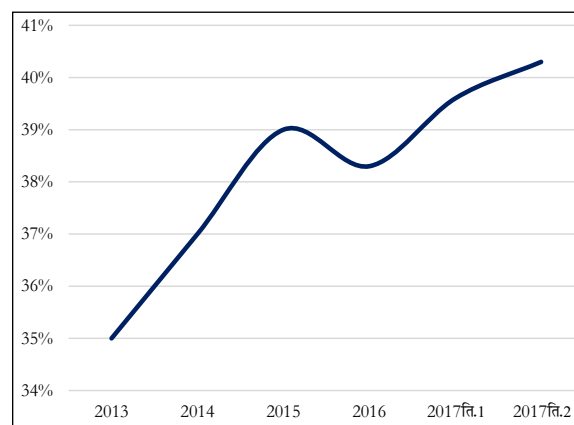
4.6 जैसे-जैसे यह जानकारी जनचेतना में फैली, यह स्पष्ट हो गया कि भारत को 'दोहरी तुलन पत्र' नामक बीमारी ने ग्रस लिया है। इसके पाश में बैंकिंग और गैर

रेखाचित्र 2 : सकल निष्पादनहीन परिसंपदा अनुपात (सकल ऋण के प्रतिशत के रूप में)



स्रोत : रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया (RBI)

रेखाचित्र 3 : ऋण आपदा ग्रस्त कंपनियों द्वारा देय ऋण अंश'

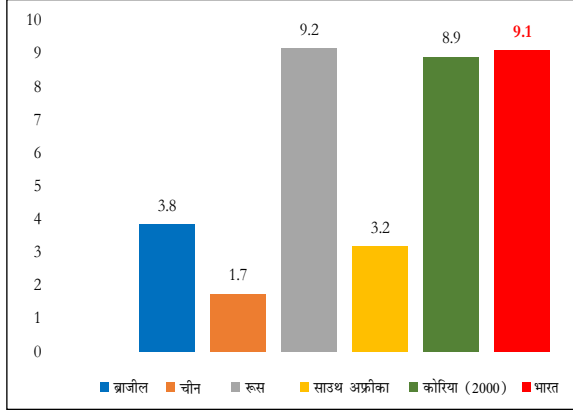


स्रोत : Credit Suisse for debt share' यह उन कंपनियों द्वारा देय ऋण का प्रतिशत है जिनका ब्याज आच्छादन अनुपात एक से कम हो गया है। यहाँ नकद प्रवाह का मापन EBIT – ब्याज और कर भुगतान पूर्व आमद से किया जा रहा है। यह 3700 गैर वित्त कंपनियों के प्रतिदर्श पर आधारित आंकलन 2013-16 की मार्च अंत की स्थिति दर्शा रहे हैं। H117 का अर्थ है वित्तीय वर्ष 2017 का पूर्वार्द्ध।

¹ इस अध्याय में किए गए विश्लेषण में क्रेडिट स्वीस के डाटाबेस का प्रयोग किया गया है, विशेषकर 3,700 सूचीबद्ध फर्मों से संबंधित जानकारी के मामले में।

बैंकिंग, दोनों प्रकार के निगम फंसे हुए थे। ये कोई छोटा मोटा दबाव नहीं था, विश्व में उच्चतम दबावों में इसकी गणना हो रही थी। वर्तमान में भारत का निष्पादनहीनता अनुपात रूस को छोड़ सभी उदीप्यमान अर्थव्यवस्थाओं से उच्च है। यह तो पूर्वी एशियाई संकट के समय कोरिया में दिखाई दिए शीर्ष स्तर से भी अधिक है (रेखाचित्र-4)।

रेखाचित्र 4 : चुने हुए देशों के NPA अनुपात (सकल ऋण का प्रतिशत)



स्रोत: भारत के लिए RBI, अन्य देशों के लिए World Development Indicator, World Bank.

4.7 इसकी क्या व्याख्या संभव हो सकती है? दोहरी तुलन पत्र व्याधि से ग्रस्त सभी अर्थव्यवस्थाओं में प्रायः एक विशेष तरीका अपनाया जाता है। उनके निगम उत्कर्षकाल में बहुत अधिक प्रसार कर बैठते हैं और उस समय की ओढ़ी हुई देनदारियां चुकाने में आगे चलकर कठिनायों का सामना करना पड़ता है। फिर तो वह ऋण नहीं चुका पाते, और उससे बैंकों के तुलन पत्रों को भी आघात लगता है। यह संयुक्त अर्थव्यवस्था की संवृद्धि के लिए विनाशकारी रूप धारण कर लेती है। पहले से ही लंगड़ा रहे निगम निवेश के लिए उन्मुख नहीं हो पाते और जिन निगमों को इस समस्या का सामना नहीं करना पड़ रहा हो वह भी निवेश में असमर्थ होकर रह जाते हैं, कारण यही है कि खस्ताहाल बैंक उन्हें उधार दे पाने की स्थिति में नहीं होते।

4.8 किन्तु भारत के संबंध में तो यह प्रतिमान सही नहीं प्रतीत होता। ठीक है भारत में भी शेष विश्व की अर्थव्यवस्था के साथ-साथ आर्थिक तेजी का दौर इस शती के प्रथम दशक मध्य में चल रहा था। किन्तु यह विश्व वित्तीय संकट से तो प्रायः अछूता ही निकल आया

था। हां संवृद्धि दर में एक बार थोड़ी शिथिलता आई थी, किन्तु शीघ्र ही तीव्र दर पर संवृद्धि का क्रम पुनः प्रारंभ हो गया था। सामान्य परंपरागत ज्ञान तो इसकी यही व्याख्या करेगा कि भारत में उत्कर्ष काल में कंपनियों और बैंकों द्वारा वे गलतियां नहीं गईं जो अन्य देशों में हुई थीं। अधिक सटीक रूप से, इस मत के अनुसार, उन्हें अत्यधिक ऋण भार चढ़ाने से तो इस बात ने बचा दिया कि विवेकपूर्ण व्यवहार विषयक प्रतिबंधों ने उत्कर्षकाल में बैंक साख का अधिक प्रसार नहीं होने दिया तथा पूंजी नियंत्रणों ने विदेशी ऋण लेने की अनावश्यक प्रवृत्तियों पर अंकुश लगा रखा था।

4.9 यदि यह वर्णन सही है तो फिर यह विस्मय होता है कि भारत में दोहरी तुलन पत्र समस्या कैसे पैदा हो गई। इसके विपरीत यदि यह विचार गलत है और भारत भी अन्य देशों वाले मार्ग पर ही चल रहा था तो यह स्पष्ट नहीं हो पाता कि परिणाम इतने कम गंभीर क्यों रहे।

4.10 इन सामान्य से परिणामों का एक कारण तो सहज ही ध्यान में आता है। इस दोहरी तुलन पत्र समस्या से ग्रस्त अन्य देशों में तो निष्पादनहीन परिसंपदाओं द्वारा गंभीर बैंकिंग संकट उत्पन्न होने से संवृद्धि पथ से उनके अर्थतंत्र विचरित हो गए थे। किन्तु भारत में ऐसा कुछ नहीं हुआ। वास्तव में ऐसा कोई संकेत भी नहीं उभरा कि बैंक क्षेत्र किसी समस्या में फंस गया है। न किसी बैंक पर जमाकर्ताओं ने चढ़ाई की है, न अन्तर्बैंक बाजार में तनाव-दबाव आया है और न 2010 में पहली बार दोहरी तुलन पत्र समस्या दिखाई पड़ने के बाद से तरलता सहायता की कोई आवश्यकता पड़ी है। इन सबका एक बहुत बड़ा कारण रहा है : समस्या का बहुत बड़ा हिस्सा सार्वजनिक बैंकों तक सीमित रहा है, उनकी पूंजी न केवल उनकी अपनी होती है बल्कि अन्ततः उन्हें सरकार का समर्थन प्राप्त रहता है और उसके (सरकार के) संसाधन तो इस निष्पादनहीन परिसंपदा समस्या का सामना करने के लिए पूर्णतः पर्याप्त हैं। इसी कारण जमाकर्ताओं का बैंक व्यवस्था में विश्वास अचल रहा है।

4.11 इसके बाद भी भारत की दोहरी तुलन पत्र व्यवस्था का अनुभव गंभीर रूप से विस्मयकारी ही बना रहता है। इस अध्याय में हम प्रश्नों के चार समूहों का उत्तर खोजने का प्रयास कर रहे हैं :

- गड़बड़ क्या हुई और कब हुई?
- अपनी दोहरी तुलन पत्र समस्या के बाद भी भारत तीव्र संवृद्धि दर पाने में किस प्रकार सफल रहा है?
- क्या भारत में चल रहा ये प्रतिमान धारणीय है?
- और, अब क्या किए जाने की आवश्यकता है?

4.12 इन प्रश्नों के उत्तर काफी जटिलतापूर्ण हैं। फिर भी नीतिगत निहितार्थों को सहज ही निरूपित किया जा सकता है। कुछ वर्षों तक तो दोहरी तुलनपत्र समस्या को एक छोटी सी समस्या मानना संभव था। आशा यही थी कि जैसे ही अर्थव्यवस्था पुनः तीव्र संवृद्धि पथ पर लौटेगी, इस समस्या का भी स्वमेव निपटान हो जाएगा। किन्तु अभी कुछ समय से प्रतीत हो रहा है कि यह इंतजार करने की युक्ति सफल नहीं हो पाएगी। संवृद्धि से दबाव में आ गई फर्मों की समस्या का हल नहीं हो

पाएगा, बल्कि इसके विपरीत इन फर्मों की समस्याएं पूरे अर्थतंत्र की संवृद्धि को संकटासन कर सकती हैं।

4.13 इस परिणाम से बचने के लिए बड़े-बड़े बुरे ऋणों की समस्या को सुलझाने के लिए एक औपचारिक संगठन की आवश्यकता हो सकती है। वस्तुतः पूर्वी एशियाई देशों में 1990 के दशक की गंभीर दोहरी तुलन पत्र समस्या से निपटने के लिए यही विधि अपनाई गई थी। लगता है एक सार्वजनिक क्षेत्रीय परिसंपदा पुनःप्रतिष्ठापन एजेंसी (PARA) के गठन का समय आ गया है।

(क) गड़बड़ क्या हुई?

4.14 निष्पादहीन परिसंपदाओं की समस्या पिछले कुछ वर्षों की देन नहीं है। यह 2000-10 के बीच लिए गए फैसलों का नतीजा नहीं है। इसकी जड़ें तो अतीत में बहुत दूर तक फैली हैं। उक्त दशक में तो सारे विश्व की अर्थव्यवस्थाएं उत्कर्षशील थी, भारत जितनी नहीं,

बॉक्स 1 : एक सार्वजनिक क्षेत्रीय परिसंपदा पुनः प्रतिष्ठापन एजेंसी क्यों जरूरी है?

ऐसी एजेंसी के पक्ष में तर्क को हम सविस्तार तो तीसरे खंड में प्रस्तुत करेंगे। किन्तु इस निष्कर्ष की ओर ले जाने वाले सात कारणों की एक अग्रिम रूपरेखा पर यहीं ध्यान देना भी उपयोगी होगा।

- (1) यह केवल बैंकों का मामला नहीं है, हमारी कंपनियों के साथ भी इसका गहरा संबंध है। अभी तक बुरे ऋण विषयक जन संवाद में सारा ध्यान बैंकों की पूंजी पर केंद्रित रहा है जैसे कि दोहरी तुलन पत्र समस्या के समाधान में एक मात्र बाधा सार्वजनिक बैंकों की जरूरत के हिसाब से पर्याप्त धन जुटा पाने की बाधा हो। किन्तु यह कोष जुटाना तो वस्तुतः सबसे आसान काम है। इसकी लागत भी सरकार के पास सुलभ संसाधनों की तुलना में बहुत कम रहेगी। कहीं अधिक उलझाव तो बुरे ऋणों की समस्या को सुलझाने का मार्ग तलाश करने में ही निहित है।
- (2) यह एक आर्थिक समस्या है, नैतिक नहीं। निश्चित रूप से कुछ भुगतान की समस्याएं इस कारण भी उठी हैं कि ऋण राशियों का कहीं अन्यत्र प्रयोग कर लिया गया है। किन्तु समस्या का अधिकांश तो आर्थिक वातावरण में आए अनअपेक्षित परिवर्तन के कारण पैदा हुआ है : समय सारिणियों और विनिमय दर में बदलाव आए हैं तथा संवृद्धि दर संबंधी मान्यताएं पूरी नहीं हो पाई हैं।
- (3) संकटग्रस्त साख ऋण का बड़ी कंपनियों में ही संकुलन हुआ है। यह संकुलन भी एक अच्छा अवसर प्रदान कर रहा है। कुछ थोड़े से मामलों के निपटान से ही दोहरी तुलनपत्र समस्या पर काबू पाया जा सकता है। किन्तु यही अधिक गंभीर चुनौती भी है : बड़े मामलों का निपटान अंतर्निहित रूप से अधिक कठिन होता है।
- (4) इनमें से कई कंपनियां वर्तमान ऋणभर के चलते अर्थक्षम नहीं बची हैं। इनके ऋणों को घटाना (माफ कर देना) आवश्यक हो रहा है। पिछले कुछ वर्षों से इन बड़ी ऋणग्रस्त कंपनियों की नगद आगम इतनी कम हो चुकी है कि अब इनके आधे से अधिक ऋणों को माफ करने से कम से काम नहीं चल पाएगा। एक मात्र अन्य विकल्प है ऋणों को अंश पूंजी में परिवर्तित करके कंपनी पर अधिकार कर उसे घाटे में बेच देना।
- (5) अनेक सहायतार्थ योजनाओं के बावजूद बैंक इन मामलों को निपटाने में कठिनाई अनुभव कर रहे हैं। उनके समक्ष अन्य समस्याएं समन्वय के स्तर पर भी आ रही हैं। बड़ी ऋणी फर्मों ने अनेक स्रोतों से ऋण लिए हैं, उनके अपने-अपने हित हैं। यदि सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक ऋणों में कोई बड़ी छूट देते हैं तो कई अन्वेषण एजेंसियां उनकी जांच में जुट जाएंगी। किन्तु बड़ी कंपनियों का अधिग्रहण करना भी राजनीतिक दृष्टि से कम समस्यापूर्ण नहीं होगा।
- (6) देरी और अधिक महंगा सिद्ध होगा। बैंक बड़े मामलों का समाधान नहीं कर पाते, इसीलिए वे ऋण उपक्रमों को पुनःवित्तीय करते जाते हैं। एक प्रकार से समस्या को और आगे धकेलते चले जाते हैं। किन्तु यह सरकार के लिए महंगा पड़ सकता है, क्योंकि बुरे ऋणों का बोझ तो बढ़ता ही जाएगा। अन्ततः सरकार को और अधिक बड़ा पुनःपूंजीकरण भार उठाना पड़ेगा। इसके साथ जुड़ी राजनीतिक लागतें और भी बढ़ी हो सकती हैं। देरी करना पूरी अर्थव्यवस्था के लिए भी महंगा सौदा होगा। इस झंझट में फंसे बैंक अब पर्याप्त साख नहीं दे पा रहे हैं और संकटग्रस्त फर्में अपने निवेश घटा रही हैं।
- (7) प्रगति के लिए PARA की आवश्यकता हो सकती है। निजी परिसंपदा पुनःप्रतिष्ठापन कंपनियां (ARCS) भी इस समस्या का निपटान करने में बैंकों से अधिक सफल नहीं हो पायी हैं। किन्तु अंतर्राष्ट्रीय अनुभव बताते हैं कि सरकार द्वारा समर्थित एक व्यवसायिक आधार पर संचालित प्रबंधित केन्द्रीय एजेंसी भले ही उसकी अपनी भी कुछ समस्याएं हो, प्रगति को बाधित करने वाली इन समस्याओं पर (अधिक आसानी से) पार पा सकती है।

यहां तो जीडीपी संवृद्धि 9-10 प्रतिशत वार्षिक को छू रही थी। देश के इतिहास में पहली बार सब कुछ ठीक चल रहा था, निगम लाभ प्रदत्ता विश्व के उच्चतम स्तरों में सम्मिलित थी, यह फर्मों को बड़ी उग्रता के साथ नियुक्तियां करने को विवश कर रही थी। परिणाम स्वरूप मजदूरी-वेतन में बहुत तेजी से वृद्धि हो रही थी। ऐसा लग रहा था कि भारत अन्ततः 1991 में प्रारंभ प्रयासों का पुरस्कार पाने लगा है। वह प्रयास एक आधुनिक स्पर्धावान अर्थव्यवस्था की स्थापना के प्रयास थे। अगला कदम भी स्पष्ट दिखाई दे रहा था : देश शीघ्र ही चीन द्वारा प्रदर्शित उस पथ पर पहुँचने वाला था, जहां अनेक दशकों तक दो आंकड़ों की संवृद्धि दर सुनिश्चित रहेगी।

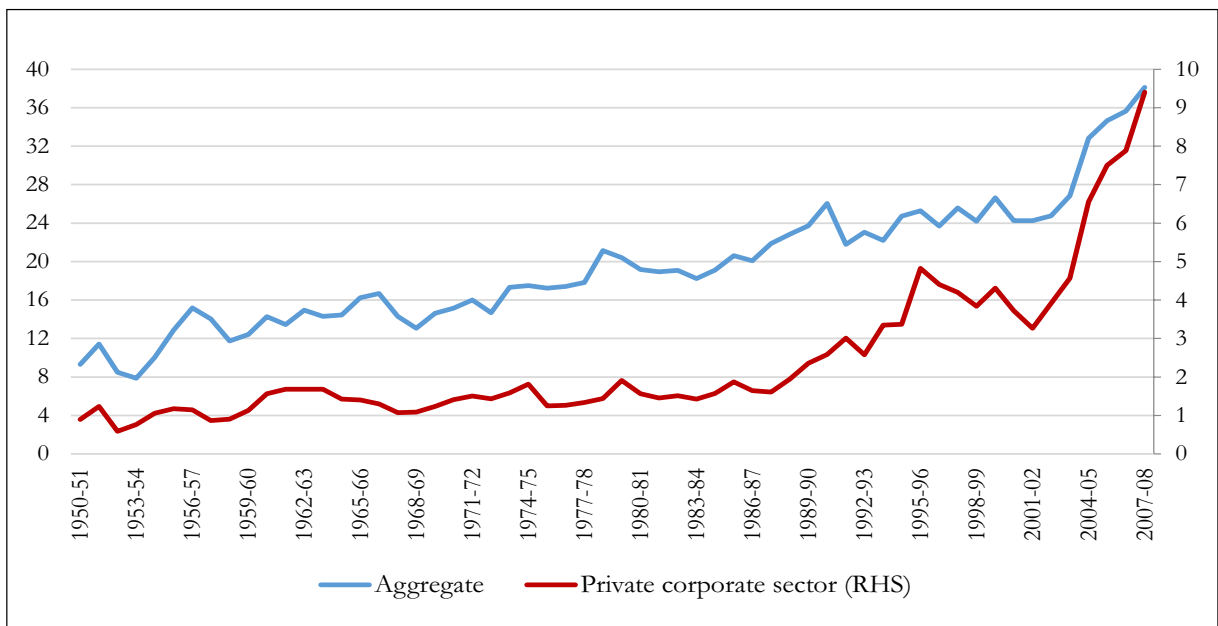
4.15 फर्मों भी इसी के अनुसार अपनी योजनाएं बना रही थी। उन्होंने विद्युत उत्पादन, इस्पात, दूर संचार जैसे संरचनात्मक पूंजी उद्यमों में कई-कई लाख करोड़ के विराट प्रकल्पों का सूत्रपात किया। इससे देश के इतिहास में सबसे बड़ा निवेश उत्कर्ष प्रारंभ हुआ। केवल चार वर्षों की छोटी सी अवधि में निवेश जीडीपी अनुपात 11 प्रतिशत अंक उछलकर 2007-08 तक 38 प्रतिशत हो चुका था (देखें रेखाचित्र-5)।

4.16 इस निवेश उत्कर्ष का वित्त प्रबंध एक आश्चर्यजनक साख उत्कर्ष द्वारा किया गया था। यह भी

देश के इतिहास में एक अभूतपूर्व अनुभव था। इसका आकार अंतर्राष्ट्रीय पटल पर चले किसी बड़े साख प्रसार के उफान से कम नहीं था। वर्ष 2004-05 से 2008-09 के बीच के तीन वर्षों में ही गैर खाद्य बैंक साख का परिमाण दुगुना हो गया। और, यह तो केवल बैंकों की साख उधार थी। विदेशों से भी बहुत बड़े धन प्रवाह आए थे, इस प्रकार प्राप्त विदेशी पूंजी प्रवाह 2007-08 में जीडीपी के 9 प्रतिशत का अंक छूने लगे थे। इन सबने मिलकर गैर वित्तीय निगमों के ऋणों में अभूतपूर्व वृद्धि कर दी थी। दूसरे शब्दों में दो अंकों में संवृद्धि के आकर्षण ने फर्मों को अपनी सतर्कतापूर्ण ऋण/अंशपूंजी अनुपात चिन्तन का त्याग कर निकट ही प्रतीत होने वाले सुअवसरों का लाभ उठाने को लालायित कर दिया था।

4.17 किन्तु जहां कंपनियां अधिक जोखिम उठाने की तैयारी कर रहीं थी उसी समय कुछ घटनाएं गलत दिशा की ओर मुड़ने लगीं। लागतें उनके बजट से बहुत आगे निकल गईं; भूमि के प्रयोग और पर्यावरण संबंधी अनुमतियां मिलने में बहुत कठिनाइयां आने लगीं और समय लगने लगा। उसी समय विश्व वित्तीय संकट के कारण उन फर्मों द्वारा जिन आगम के पूर्वानुमानों के आधार पर काम का आरंभ किया गया था, वही ध्वस्त हो गया; जो प्रकल्प इस मान्यता के आधार पर प्रारंभ

रेखाचित्र 5 : सकल पूंजी निर्माण : सकल एवं निजी निगम क्षेत्र
(जीडीपी का प्रतिशत)



स्रोत: केन्द्रीय सांख्यिकी कार्यालय।

किए गए थे कि दो अंकों पर ही संवृद्धि दर बनी रहेगी, उन्हें अचानक आधी संवृद्धि दर का सामना करना पड़ गया।

4.18 जैसे कि ये समस्याएं काफी नहीं थी, वित्त जुटाने की लागतें तेजी से बढ़ने लगीं। जब रिजर्व बैंक ने दो अंकों वाली स्फीति पर अंकुश लगाने के लिए ब्याज की दरों में वृद्धि की तो देश के आंतरिक वित्त तंत्र से उधार लेने वाली फर्मों की लागतें और अधिक हो गईं। यही नहीं जिन फर्मों ने 40 रूपए प्रति डालर की विनिमय दर पर विदेशी ऋण उठाए थे, उन्हें 60-70 रूपए प्रति डालर की दर पर उन ऋणों को चुकाना बहुत ही भारी पड़ने लगा।

4.19 उच्चतर लागत, निम्नतर आगम, अधिक वित्तीय लागतें। इन सबने मिलकर निगमों के नकद प्रवाहों को सुखा ही डाला, उन्हें ऋणों पर ब्याज और किश्तें चुकाना कठिन होने लगा। वर्ष 2013 तक एक तिहाई निगम ऋण उन निगमों ने उठाया हुआ था, जो देय ब्याज के एक प्रतिशत से भी कम कमाई कर पा रहीं थी (IC1 कंपनियां) इनमें से बहुत सी तो संरचना उद्योगों (विशेषकर विद्युत उत्पादन) और धातु परिशोधन क्षेत्रकों में थीं। वर्ष 2015 आते-आते IC1 कंपनियों का अंश 40 प्रतिशत तक पहुँच गया। चीन की संवृद्धि दर धीमी होने से विश्व बाजार में इस्पात की कीमतें गिर गईं, प्रायः सभी इस्पात कंपनियों को भारी हानि उठानी पड़ी। सरकार ने तुरंत कदम उठाते हुए इस्पात की न्यूनतम आयात कीमतें तय कर डाली, विश्व बाजार में इस्पात कीमत में कुछ सुधार होने पर भारत के इस्पात उद्योग को कुछ राहत मिली। फिर भी 2016 के अंत तक IC1 कंपनियों का ऋणों में अंश 40 प्रतिशत से अधिक ही बना रहा।

(ख) भारतीय अभिलक्षणों वाले दोहरे तुलन पत्र रोग की व्याख्या कैसे होगी?

4.20 दूसरे शब्दों में सामान्य विचार के विपरीत भारत ने चिर परिचित मार्ग का अनुसरण करते हुए ही अपनी दोहरी तुलन पत्र समस्या को प्राप्त किया, अर्थात्, उधार में उछाल, उधार का अंश पूंजी से अत्यधिक होना और फिर ऋण एवं ब्याज चुकाने में कठिनाइयां। हां, भारत इस समस्या के प्रभाव के मामले में शेष देशों से अलग रहा है। भारत में भी तुलन पत्रों को इस अत्यधिक उधार

से गंभीर आघात तो लगे हैं, किन्तु संवृद्धि पर इसका प्रभाव बहुत सीमित ही रहा है। विश्व वित्तीय संकट के उपरांत अमेरिका और यूरोप की भांति यहां दोहरी तुलन पत्र समस्या ने आर्थिक गतिहीनता की स्थिति तो पैदा नहीं की, न ही 1990 के दशक में जापान में बुलबुला फूटने पर हुए जैसे हालात पैदा हुए। इन सबके विपरीत यह समस्या सशक्त आंतरिक मांग के सहारे उच्च संवृद्धि दर के साथ सहअस्तित्व बना कर चलती रही। उच्च घरेलू मांग-संवृद्धि का क्रम बहुत दुर्बल निर्यात निष्पादन और सामान्य से तीव्र स्फीति के साथ-साथ चलता ही रहा। दूसरे शब्दों में, भारत ने दोहरी तुलन पत्र समस्या का अपना ही स्वरूप गढ़ लिया। आर्थिक समीक्षा ने इसी को भारतीय अभिलक्षणों सहित दोहरी तुलनपत्र समस्या का नाम दिया है।

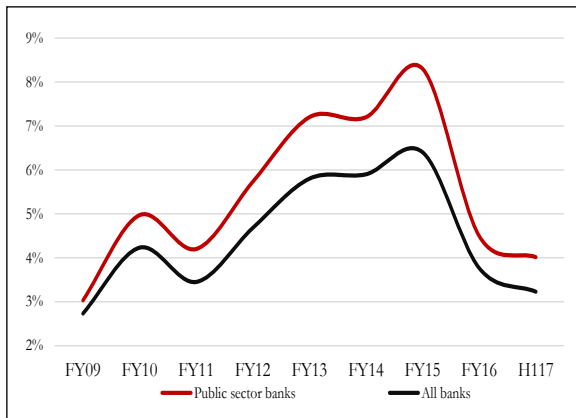
4.21 तो फिर भारत के इस अद्वितीय अनुभव की व्याख्या क्या कर पाएगा? किसी सीमा तक तो, जैसे हमने भाग 'क' में भी बताया है, भारत की बैंक व्यवस्था की अनूठी रचना ने ही यह सुनिश्चित कर दिया था कि कोई वित्तीय संकट उत्पन्न नहीं हो। संरचनागत संरोधों के कारण विनिर्माण ही नहीं वाणिज्य और परिवहन जैसी सेवा क्षेत्रीय गतिविधियों के प्रसार में भी आती रही बाधाओं ने भारत में आपूर्ति संरोधों की प्रताड़ना को, बहुत समय से, बड़ा विकट स्वरूप मिला रहा है। उत्कर्ष काल में ये संरोध काफी नरम पड़ गए थे, नए विद्युत संयंत्र लगाए गए, नई सड़कों, हवाई अड्डों और बन्दरगाहों का निर्माण भी हुआ था। अतः वैश्विक वित्तीय संकट के बावजूद अर्थव्यवस्था के पास संवृद्धि की प्रचुर संभावनाएं विद्यमान थी, भले ही संरचना तंत्र में हुआ निवेश बहुत अर्थक्षम सिद्ध नहीं हो पाया था। अतः 2000-10 के एतिहासिक निवेश उत्कर्ष की थाती का रूप दोहरी तुलनपत्र समस्या और संवृद्धि का समन्वय रहा। इसकी तुलना में संयुक्त राज्य अमेरिका का उत्कर्ष तो गृह निर्माण पर आधारित था। संकट के बाद वह क्षेत्र अधिक उपयोगी नहीं रह पाया। वैसे भी अमेरिका ने कभी गंभीर आपूर्ति संरोधों को नहीं झेला था।

4.22 संभवतः भारत और अन्य देशों के बीच सबसे महत्वपूर्ण अन्तर तो निगमों द्वारा झेले जा रहे गंभीर संकट पर वित्त क्षेत्र की प्रतिक्रिया में निहित था। अन्य देशों में ऋणदाताओं का सहज व्यवहार ऋण निगमों को दीवालिया घोषित कराकर एक नए संतुलन की स्थापना होता है। इससे अल्पकाल में संवृद्धि को आघात लगता

ही है (भले ही अर्थव्यवस्था की पुनःरचना दीर्घकालिक संभावना को उज्ज्वल बना देती है)। किन्तु भारत में ऐसा कुछ नहीं हुआ। यहां तो 'वक्त को कुछ और वक्त दो' की युक्ति अपनाई गई, अर्थात् निगम क्षेत्र के जख्मों को भर जाने के लिए समय दिया गया। निगमों ने अपने ऋणदाताओं से ही वित्तीय रियायतें मांगी, मूल का पुनः भुगतान यह कह कर स्थगित करने का अनुरोध किया गया कि पर्याप्त समय मिल जाने पर प्रकल्प अन्ततः अर्थक्षम हो ही जाएंगे।

4.23 शुरू में तो यह अनुरोध उचित ही लगा था। पिछले व्यवसाय चक्रों में, 2000 के प्रारंभिक वर्षों में 'वक्त को वक्त' देने की युक्ति कारगर भी रही थी। उस समय भी निष्पादनहीन ऋणों का आकार बहुत बड़ा हो गया था, किन्तु कुछ ही वर्षों में मांग में सुधार के कारण कीमतों के सुधार के फलस्वरूप यह आकार स्वतः ही नियंत्रित हो गया था। यह ठीक ही लग रहा था कि इस बार भी ऐसा ही होगा, क्योंकि जिस संरचना क्षमता का निर्माण हो रहा था, उसकी अन्ततः भारत को आवश्यकता तो पड़ेगी ही। अतः बैंकों ने संकटासन्न फर्मों को और समय देने के लिए ऋण की वसूली स्थगित करनी प्रारंभ कर दी। यहां तक कि 2014-15 तक वे अपने बकाया ऋणों के 6.4 प्रतिशत भाग का 'पुनर्गठन' कर चुके थे (रेखाचित्र 6'क')। उन्होंने मांग के स्तर में सुधार तक की अवधि तक काम चलाने के लिए उक्त फर्मों को नए ऋण भी प्रदान किए।

रेखाचित्र 6क : पुनः रचित ऋण अनुपात
(सकल ऋणों का %)

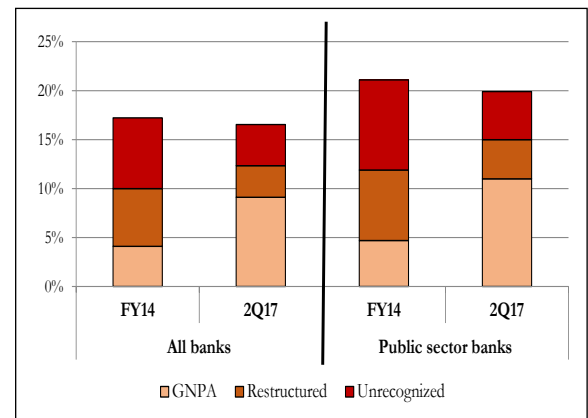


स्रोत: आरबीआई, क्रेडिट स्यूएस द्वारा आंकलित मान्यतरहित दबावग्रस्त आस्तियों को छोड़कर।

4.24 अतः परिणाम यह हुआ है कि संकटग्रस्त परिसंपदाओं का मान निष्पादनहीन परिसंपदाओं से कहीं अधिक बढ़ा चढ़ा हो गया है। इसमें पुनर्गठित ऋणों तथा IC1 निगमों की वह देयताएं भी जोड़ी जानी चाहिए, जिन्हें अभी तक संकटग्रस्त नहीं माना गया है। उन ऋणों को तो बैंक 'निरंतर हरित' (Evergreen) किए जा रहे हैं। यहां बैंक फर्मों को पुराने ऋणों पर ब्याज चुकाने के लिए नए ऋण प्रदान कर रहे हैं। बाजार विश्लेषक मानते हैं कि ये ऋण नहीं मानी जा रही राशियां भी बैंकों द्वारा दिए गए कुल उधार का 4 प्रतिशत (सरकारी बैंकों के संदर्भ में तो 5 प्रतिशत) तक पहुँच चुकी है। ऐसी अवस्था में संकटग्रस्त ऋण परिसंपदाएं 16.6 प्रतिशत हो जाती है। सरकारी बैंकों के लिए तो इनका मान लगभग 20 प्रतिशत आंका जा रहा है (रेखाचित्र 6ख)²।

4.25 अनेक प्रकार से भारत का रास्ता चीन से मिलता जुलता लगता है। हां, इसका स्तर बहुत छोटा है, क्योंकि भारत में निष्पादनहीन बुरे ऋणों का आकार चीन के आकार का मात्र 1/7 हिस्सा है। दोनों देशों ने बुरी तरह ऋणग्रस्त कंपनियों को उदारतापूर्वक बैंक वित्त सुलभ कराया है और दोनों देशों की यह युक्ति तीव्र संवृद्धि दर को बनाए रखने में अभी तक तो सफल रही है। किन्तु यह प्रश्न अभी खड़ा हुआ है कि क्या यह प्रतिमान सचमुच धारणीय सिद्ध होगा?

रेखाचित्र 6ख : सकल आपदा भार
(%)



² पुनर्गठित परिसंपदाओं में 2014-15 में केवल इसलिए कभी आ गई थी कि इन अनुबंधों के बाद उन ऋणग्रस्त कंपनियों को अनुपालन नहीं करना पड़ा, बैंकों ने और अधिक ऋणों को निष्पादनहीन घोषित करना प्रारंभ कर दिया।

तालिका 1 : अनुमानित निष्पादनहीन ऋण

	भारत	चीन	भारत	चीन
	1998-99	2002	2016@	2015
सकल + बिलियन	14.0	209.1	191.1	1300
सकल ऋणों का प्रतिशत	14.7	23.4	16.6^	15.5
जीडीपी का प्रतिशत	3.0	14.4	8.4	12.0
बैंक साख (जीडीपी अनुपात)	20.5	108#	53.4*	137.5**

स्रोत: आईएमएफ, आरबीआई, क्रेडिट सूइस प्राक्कलन।

@सितंबर 2016 तक उपलब्ध आंकड़े के अनुसार। ^: कुल दबाव वाले ऋणों में एनपीए, पुनर्संचित ऋण और अमान्य दबावग्रस्त ऋण शामिल है; * मार्च 2016 की स्थिति के अनुसार, आरबीआई से प्राप्त उद्योग विषयक आंकड़े में बकाया ऋण का इस्तेमाल करते हुए; # “मनी एंड क्रेडिट: चाइना सोशल फाइनेंशियल”, यारडेनी रिसर्च, इन्क, नवंबर 2016 में यथावर्णित पीपुल्स बैंक आफ चाइना; **पीआरसी 2016 आर्टिकल। IV कन्सलटेशन, आईएमएफ।

II. क्या यह युक्ति धारणीय है?

4.26 सिद्धांत रूप से तो एक वित्तीयन युक्ति धारणीय हो सकती है। किन्तु इसके लिए दो में से एक बात अवश्य सत्य सिद्ध होनी चाहिए। ‘पुनर्उत्थान’ परिदृश्य के अंतर्गत संवृद्धि दर में तीव्रता धीरे-धीरे ‘संकटासन्न’ फर्मों के पास आने वाले नकदी के प्रवाह को सुधार देगी और वे अपनी ऋण संबंधी देनदारियां चुका पाएंगी। दूसरे शब्दों में, भारतीय अर्थव्यवस्था की अंतर्निहित गतिशीलता ही क्षतिग्रस्त कंपनियों और बैंकों के भार को तब तक ढोती रहेगी, जब तक कि आर्थिक गतिविधियों का ‘ज्वार’ सभी किश्तियों के लिए मंदी के पथरीले जल क्षेत्र को पार करने योग्य नहीं बना देता।

4.27 दूसरी या वैकल्पिक परिस्थिति ऐसी हो सकती है कि जिसमें सभी प्रकल्प वैयक्तिक स्तर पर तो अर्थक्षम नहीं बन पाएंगे किन्तु भारत की अर्थव्यवस्था अवश्य इस तुलनपत्र समस्या से उबर जाएगी। यहां ‘समस्या परिसीमन’ की विधि में निष्पादनहीन परिसंपदाओं को मौद्रिक रूप में नामांकित किया जा सकता है। एक बार यह काम हो गया तो इनके परिमाण जीडीपी एवं बैंक तुलनपत्रों के अंश के रूप में शीघ्र ही सिकुड़ते दिखाई देंगे, क्योंकि मौद्रिक जीडीपी में तो 10 प्रतिशत से अधिक दर पर वार्षिक वृद्धि हो रही है। इस प्रकार यह दोहरी तुलन पत्र समस्या वास्तव में समाप्त तो नहीं होगी, किन्तु इसका महत्व विलुप्त प्रायः हो जाएगा।

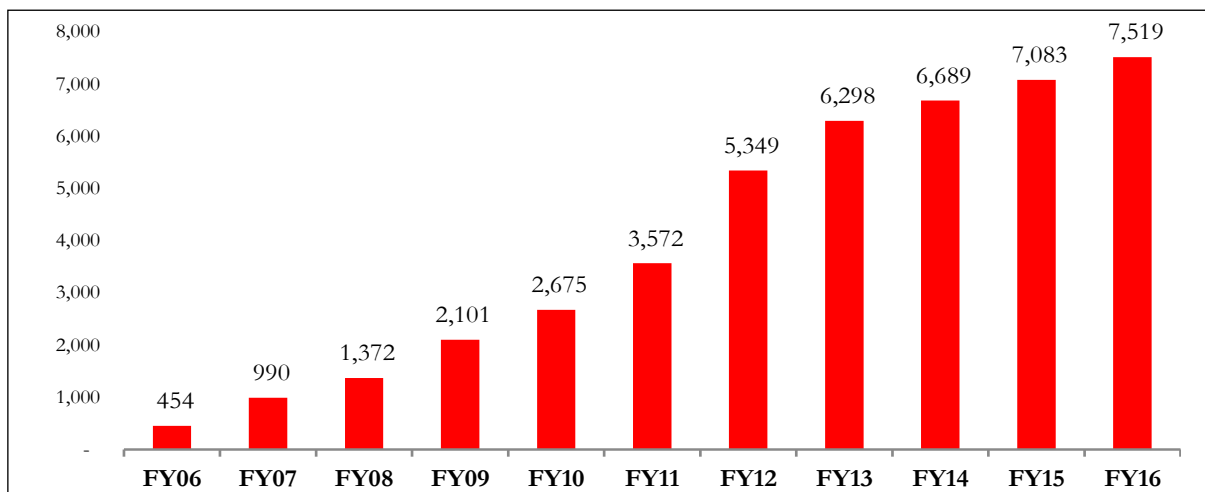
4.28 कुछ समय तक तो ये दोनों ही परिदृश्य व्यवहारिक प्रतीत हो रहे थे। वर्ष 2012 से लेकर मध्य 2015 तक तो IC1 कंपनियों की ब्याज एवं कर पूर्व आय (EBIT) प्रति तिमाही रू. 25000 करोड़ पर टिकी हुई थी।³ इससे यही आशा बलवती हो रही थी कि कम से कम ‘परिसीमन’ परिदृश्य तो उभर ही आएगा। किन्तु अभी कुछ ही समय पर यह चित्र बहुत ही नाटकीय रूप से बदल गया है। वर्ष 2015 के अंत तक यह EBIT मात्र रू. 20000 करोड़ प्रति तिमाही रह गई। सितंबर 2016 में तो धातु क्षेत्र में कुछ सुधार आया किन्तु शेष संरचना क्षेत्र के भारी गिरावट से यह त्रैमासिक EBIT गिरकर मात्र रू. 15000 करोड़ रह गई। दूसरे शब्दों में, संकटग्रस्त कंपनियों की नकद आगम, जो 2014 में भी ऋण पर ब्याज चुकाने के लिए पर्याप्त नहीं थी, में और 40 प्रतिशत की गिरावट हो गई। यह भी दो वर्ष से कम समय में।

4.29 इन कंपनियों को कार्य करते रहने के लिए भी भारी ऋण उठाने पड़े हैं। यदि 10 सर्वाधिक संकटग्रस्त समूहों के ऋणों पर ध्यान दें तो उनमें अत्यधिक तीव्र दर पर वृद्धि दिखाई दे रही है, पिछले 6 वर्षों में ये तीन गुना हो गए हैं (रेखाचित्र 7)। इसका सहज परिणाम है कि उनकी ब्याज की देनदारी में भी तीखी वृद्धि हुई है।

4.30 अतः संकटग्रस्त कंपनियों की कठिनाइयां बढ़ती जा रही है। उनके नकद प्रवाह सूखते जा रहे हैं और ब्याज दायित्वों में उछाल आ रहा है। यदि इन

³ ये तीन तथा अगले 5 अनुच्छेदों के आंकड़े क्रेडिट स्विस् आंकड़ा आधार से लिए गए हैं।

रेखाचित्र 7 : दस शीर्ष संकटग्रस्त निगमों के ऋण भार (रूपए बिलियन)*



स्रोत : Credit Suisse आंकड़ा आधार। *बैंक ऋण, बाँड, बाहरी व्यापारिक ऋण और अन्य ऋणों सहित।

परिस्थितियों में वे और अधिक उधार उठाती हैं तो यह नकद प्रवाह और ब्याज दायित्व की खाई और अधिक चौड़ी हो जाएगी। कुछ मामलों में कंपनियों ने अपने व्यवसाय का कुछ अंश बेचकर काम चलाने का प्रयास किया है, किन्तु इस प्रकार तुरंत प्राप्त नकदी से अस्थायी राहत ही मिल सकती है, फर्मों के पास भविष्य में ऋण चुकाने के निमित्त आगम के स्रोत और सीमित रह जाते हैं। यही नहीं, यह कदम बहुत कम कंपनियों के लिए ही अल्पकालिक राहत ला पाया है। संकटग्रस्त कंपनियों की सकल वित्तीय अवस्था से तो निरंतर रक्त बह कर जा रहा है। इनकी हानियाँ (ब्याज की देयता और मूल्य हास तथा कर भार EBIT तथा परिसंपदा विक्रय से प्राप्त राशियों से अधिकता) अब लगभग रू. 15000 करोड़ त्रैमासिक हो गई है। दो वर्ष पूर्व तो ये फिर भी थोड़ा सा लाभ दिखा पा रहीं थीं।

4.31 विद्युत क्षेत्र की दशा अधिक व्यापक स्तर पर छायाई हुई समस्या का बहुत अच्छी तरह वर्णन कर देती है। दूसरे खंड में चर्चित आघातों ने नए विद्युत संयंत्रों की लागतों को अनुमान से डेढ़ गुना तक पहुंचा दिया। कुछ मामलों में तो यह लागत वृद्धि और भी अधिक रही है। इन लागतों का वहन करने के लिए इन संयंत्रों

को अपनी सारी सृजित विद्युत की बिक्री उच्चतम दर पर करनी चाहिए। किन्तु हो इसके एकदम विपरीत रहा है।

- संयंत्र निष्पादन दर, अर्थात् स्थापित क्षमता के अनुपात में वास्तव में बिजली की उत्पादन दर बहुत कम ही नहीं है, इसमें निरंतर गिरावट आ रही है। पिछले वर्ष के 62 प्रतिशत की तुलना में यह अप्रैल-दिसंबर 2016 में घटकर मात्र 59.6 प्रतिशत रह गई थी।
- यही नहीं, विक्रेता द्वारा देय विद्युत दर भी ताजा बाजार में गिरकर रू. 2.5/kwh रह गई है। यह उन संयंत्रों की अपनी अर्थक्षम उत्पादन लागत रू. 4/kwh से बहुत कम है, जबकि कितने ही संयंत्रों को चलाने के लिए तो रू. 8/kwh पर बिजली की बिक्री होनी चाहिए।⁴

8.32 परिणाम स्वरूप अधिकांश निजी विद्युत उत्पादों को प्राप्य नकद प्रवाह उनके ब्याज भुगतान को भी पूरा नहीं कर पा रहे। दूसरे शब्दों में इन कंपनियों का 60 प्रतिशत से अधिक देय ऋण इन्हें IC1 कंपनियों की सूची में ले जाता है। साथ ही अभी तो क्षितिज पर PLF (संयंत्र प्रयुक्ति अनुपात) और विक्रय दरों में सुधार की कोई आशा भी नहीं दिखाई दे रही।

⁴ यह ठीक है कि विद्युत क्रय अनुबंधों के अनुसार बहुत सा विद्युत उत्पादन तो कहीं उच्चतर दीर्घकालिक कीमत पर बिक जाता है, किन्तु कई मामलों में तो ये दरें भी लागतों से कम रहती हैं। यही नहीं PPA के अधीन खरीदी गई बिजली का अनुपात गिर रहा है। राज्य विद्युत बोर्ड तत्काल या ताजा बाजार से सस्ती दर पर खरीदारी को बेहतर मान रहे हैं, वहां इसकी प्रचुर मात्रा भी सुलभ है। ध्यान रहे कि यदि संयंत्र लगाने की लागतों में वह वृद्धि नहीं हुई होती तो अधिकांश नए संयंत्रों को लाभप्रद बनाए रखने के लिए रू. 3/kwh की बिक्री दर ही पर्याप्त होती।

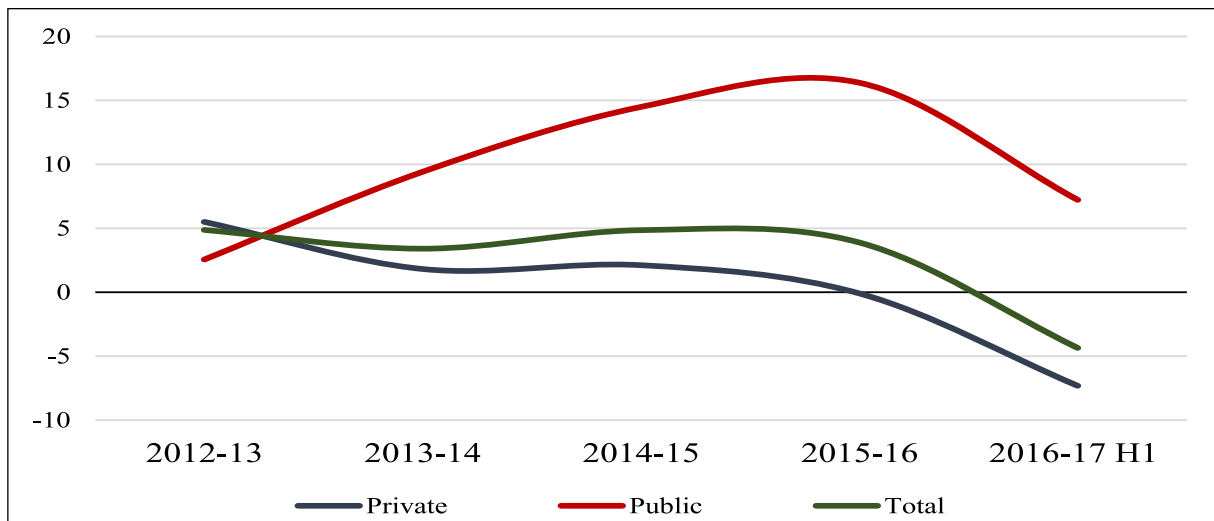
4.33 इसी समय निगमित क्षेत्र में संकट का और विस्तार भी हो रहा है। वैश्विक वित्तीय संकट के बाद से बहुत समय तक तो समस्याएं उन्हीं बड़ी कंपनियों तक सीमित थी, जिन्होंने 2000-10 के दशक में बहुत भारी ऋण उठा लिए थे। किन्तु अधिक सावधानीपूर्वक काम कर रही छोटी, और मध्यम आकार की कंपनियां प्रायः अपनी ब्याज की देनदारियां नियमित चुका रही थी। लेकिन 2016 के उत्तरार्द्ध में एक चौंकाने वाली बात उभर कर आई। इस अवधि में निष्पादनहीन परिसंपदा वृद्धि का 80 प्रतिशत अंश मध्यम एवं MSME उद्यमों का 'योगदान' था। छोटे उद्यमी तो वर्षों से कम बिक्री और लाभ को सहन करते हुए भी ऋण चुकाने में नियमित बने हुए थे। इस वर्ष 2017 में भी यही क्रम चलने की आशा है।

4.34 अब संकट की छाया दूरसंचार क्षेत्र पर भी मंडराने लगी है। यहां नई आई फर्मों ने स्पर्धा में वृद्धि कर ब्याज अर्जन क्षमता को घटा दिया है (बड़े स्तर पर कंपनियां कीमतें कम करने को बाध्य जो हो रहीं हैं। कुल मिलाकर स्थिति यह है : निगम क्षेत्र पर दबाव के बादल न केवल गहरा रहे हैं, ये और व्यापक भी हो रहे हैं।

4.35 एक अन्य कारण से भी लगता है कि अर्थव्यवस्था अपने इन ऋणों से उबर नहीं पाएगी : अब यह समस्या संवृद्धि पर भी आघात करने लगी है। पहले भाग में भी हमने ध्यान दिया था कि दोहरी तुलनपत्र समस्या वाले देशों में संकटग्रस्त कंपनियां अपने नकद प्रवाहों को बचाए रखने के प्रयास में निवेश में कटौतियां करने लगती हैं तो दूसरी ओर संकटग्रस्त बैंक नए उधार देने की जोखिम नहीं उठाना चाहते (देखें डेल ऐरिकिकआ आदि, 2012)⁵ और यही अब भारत में भी होने लगा है। उत्कर्ष काल में आकाश छू रहा निजी निवेश घटकर 2010-11 आते-आते मात्र 5 प्रतिशत रह गया। वर्ष 2015-16 तक तो इसमें वास्तव में संकुचन ही प्रारंभ हो गया था और अभी 2016-17 में इसमें 7 प्रतिशत संकुचन हो चुका है (रेखाचित्र 8)⁶। समस्त अर्थव्यवस्था को इसके दुष्प्रभाव से बचाने के लिए सार्वजनिक निवेश में बहुत वृद्धि की गई है, किन्तु वह सकल निवेश में गिरावट को थामने के लिए पर्याप्त नहीं है।

4.36 अल्पकाल में तो उपभोग के सहारे भी अर्थव्यवस्था तेजी से संवृद्धिशील रह सकती है, फर्मों उत्कर्षकाल में सृजित उत्पादन क्षमता का प्रयोग करते हुए मांग को पूरा कर सकती है। किन्तु मध्यमकालिक दृष्टि से तो निवेश में गिरावट की प्रक्रिया को पलटना ही पड़ेगा।

रेखाचित्र 8 : वास्तविक सकल अचल पूंजी निर्माण में वृद्धि (प्रतिशत)



स्रोत: वित्त मंत्रालय द्वारा की गई गणना

⁵ डेल आदि ने पाया है कि 5 में से 3 साख उत्कर्ष कालों में उनके अंत के 6 वर्ष बाद तक संवृद्धि दरें अपने सामान्य प्रवृत्ति स्तरों से कम ही बनी रहीं। इन वर्षों में संवृद्धि दरें सामान्य अवधियों की अपेक्षा 2.2 प्रतिशत अंक निम्न आंकी गई हैं।

⁶ यह जानकारी राज्य एवं संघीय सरकारों के बजटों पर आधारित है।

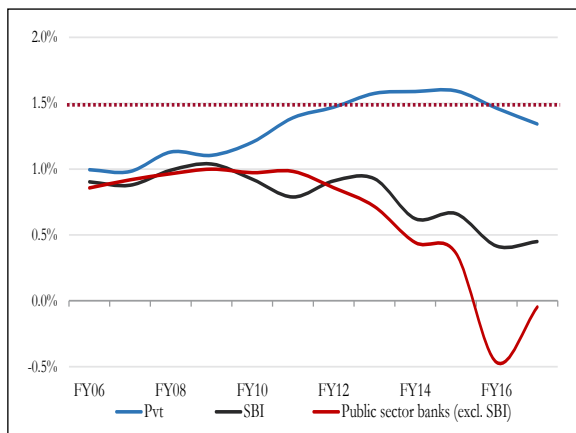
4.37 यही नहीं, इस समय दोहरी तुलन पत्र 'व्यवस्था' सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के स्वास्थ्य के लिए बहुत घातक सिद्ध हो रही है। कम से कम 13 ऐसे बैंक, जिन्होंने सकल ऋणों का 40 प्रतिशत अंश फर्मों को प्रदान किया हुआ है, अब भीषण संकट से ग्रस्त हो रहे हैं। उनके 20 प्रतिशत ऋण अब पुनःरचित अथवा निष्पादनहीन⁷ वर्ग में पहुंच चुके हैं। उनके निवेश पत्र भंडार के इतने बड़े अंश की दुर्दशा के कारण उनके लिए अपने कार्य चलाने तथा जमाकर्ताओं को ब्याज चुकाने की लागतें कमा पाना कठिन होता जा रहा है। प्रायः विश्व भर में बैंक परिसंपदा की प्रतिप्राप्ति (ROA) की दर 1.5 प्रतिशत रहने पर आराम से काम करते रहते हैं। इसे रेखाचित्र 9'क' में लाल रेखा द्वारा दिखाया गया है। किन्तु भारत के सरकारी बैंक तो इस अंतर्राष्ट्रीय मानक दर से बहुत नीचे रह जाते हैं। वस्तुतः उनकी ROA पिछले दो वर्षों में ऋणात्मक हो चली है। परिणाम स्वरूप अब निवेशकर्ता उनके शेयरों के लिए पूरी कीमत चुकाने को भी तैयार नहीं होते। ये शेयर कीमतें उनके लेखा मूल्यांकन (बुक वैल्यु) के दो तिहाई के समान रह गई हैं (देखे रेखाचित्र 9'ख')।

4.38 सरकारी बैंकों ने अपनी वित्तीय कठिनाईओं पर मानक प्रतिक्रिया दिखाई है। अपनी पूंजी स्थिति को बनाए रखने के लिए उन्होंने नए जोखिम लेना कम कर दिया है, अर्थात् अब वे आगे उधार देने से बच रहे हैं। इस

साख की कमी का कुछ अंश तो निजी बैंक पूरा कर रहे हैं, किन्तु उनका आकार सरकारी बैंकों की तुलना में बहुत छोटा होने के कारण वे इस साख प्रसार का पूरा दायित्व तो नहीं उठा पा रहे। परिणामस्वरूप निगम क्षेत्र को प्रदत्त कुल साख में निरंतर कमी आ रही है। वास्तविक रूप में तो अब साख की वृद्धि दर नकारात्मक हो चुकी है। यह पिछले 23 वर्षों के न्यूनतम साख स्तर को दर्शा रही है (रेखाचित्र 10)।

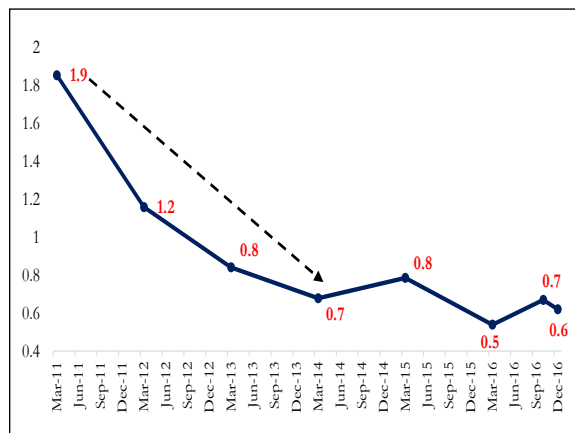
4.39 इस धीमे किन्तु निरंतर चल रहे साख संकुचन के प्रभाव अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में पृथक-पृथक रहे हैं। गृहस्थों को ऋणों में अत्यधिक तेजी से वृद्धि हुई है। यह ऐसा साख प्रसार है, जहां मूल और ब्याज के मारे जाने की संभावना न्यूनतम होती है। यहां निजी बैंकों को एक तुलनात्मक लाभ भी प्राप्त रहता है। परिणाम स्वरूप ऋणों के सहारे उपभोग का प्रसार बहुत तेजी से हो रहा है। कृषि क्षेत्र को साख का प्रसार तो वरीयता साख की अनिवार्यता से बंधा होने के कारण अच्छी संवृद्धि दिखा ही रहा है। किन्तु निगम और MSMEs वर्ग को गहरा आघात लगा है। वर्ष 2014-15 में MSMEs को ऋणों की वास्तविक वृद्धि में बहुत कमी आई है और पिछले दो वर्षों में तो यह नकारात्मक ही हो गई है (रेखाचित्र 11'क')। इसी समय बड़ी कंपनियों को ऋण प्रदान करने में तेजी ही बनी रही। कारण यही था कि उन्हें बंद होने से रोकने की रणनीति पर चला जा रहा था, किन्तु वित्त

रेखाचित्र 9क : सार्वजनिक बैंक परिसंपदाओं प्रतिप्राप्ति (ROA) प्रतिशत



स्रोत: वित्त मंत्रालय

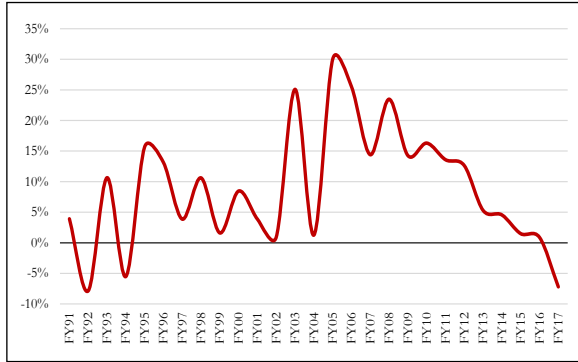
रेखाचित्र 9ख: सार्वजनिक बैंक : बाजार पूंजीकरण का खाता मूल्य से अनुपात



स्रोत: वित्त मंत्रालय

⁷ अमान्य या 'सातत्य' ऋणों को छोड़कर

रेखाचित्र 10 : उद्योगों को ऋणों में वास्तविक वृद्धि (CPI-IW तथा WPI की औसत द्वारा अपस्फायित)*

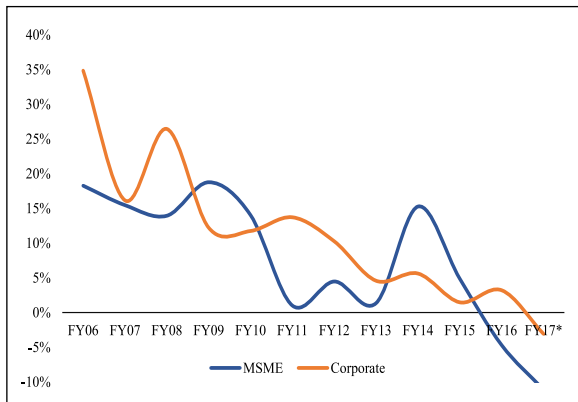


*वित्त वर्ष 2017 की जानकारी नवंबर 2016 के अंत तक की ही है।

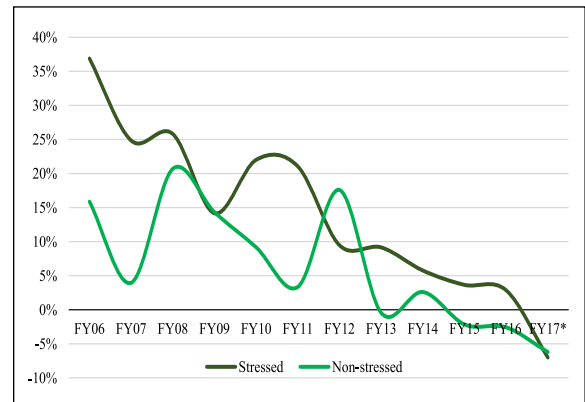
वर्ष 2016-17 में इन्हें प्रदत्त साख की संवृद्धि दर भी वस्तुतः ऋणात्मक हो चुकी है (रेखाचित्र 11'ख')।

4.40 सरकारी बैंकों ने अपनी वित्तीय कठिनाइयों पर एक अन्य मानक प्रतिक्रिया भी दोहराई है। उन्होंने निष्पादनहीन परिसंपदाओं पर हो रहे घाटे की भरपाई करने के लिए ब्याज दरों के बीच के फैलाव को बढ़ा दिया है (रेखाचित्र 12)। उदाहरण के लिए दिसंबर 2016 होते-होते और सावधिक जमा दर और औसत आधार दर के बीच का अंतर जनवरी, 2015 के 1.6 प्रतिशत अंक से बढ़कर 2.7 प्रतिशत अंक हो गया था। वस्तुतः

रेखाचित्र 11क : वास्तविक ऋण वृद्धि* MSME एवं निगम

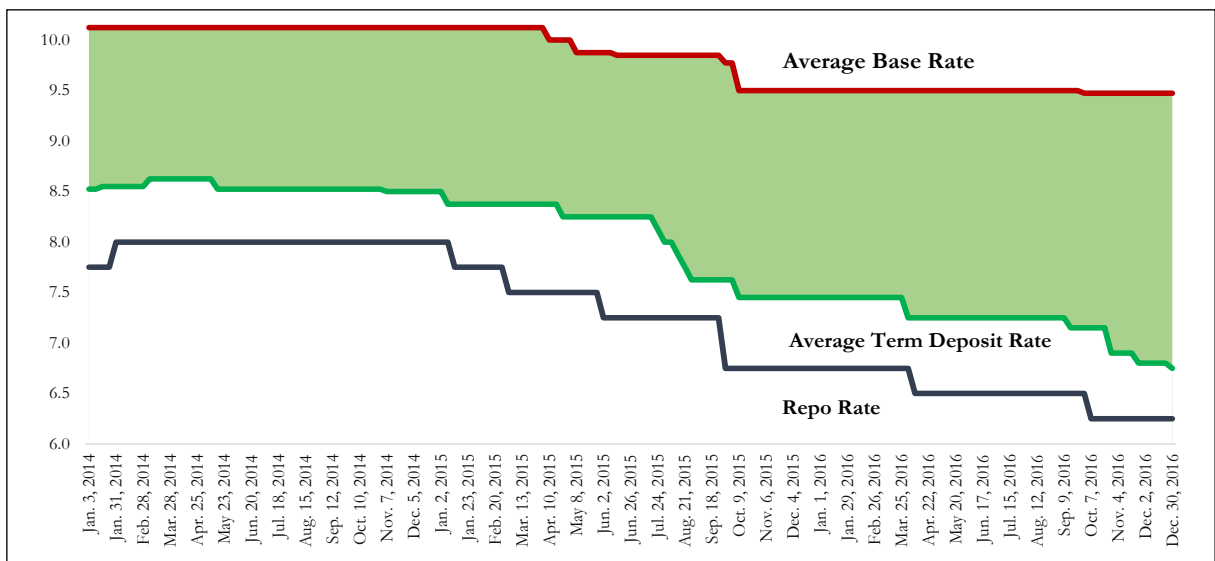


रेखाचित्र 11ख : वास्तविक ऋण वृद्धि* संकटासन्न एवं गैर संकटासन्न



स्रोत : RBI,* CPI तथा WPI की औसत द्वारा अपस्फायित, वित्तवर्ष 2017 के आंकड़े नवंबर 2016 के अंत तक। निगम एवं विनिर्माणा एवं सेवा सम्मिलित। संकटग्रस्त उद्योग हैं : खनन, वस्त्र, आधारिक धातुएं, रत्न एवं आभूषण, निर्माण, संरचना।

रेखाचित्र 12 : रैपो, आधार उधार दर और सावधिक जमा पर ब्याज दर (प्रतिशत)

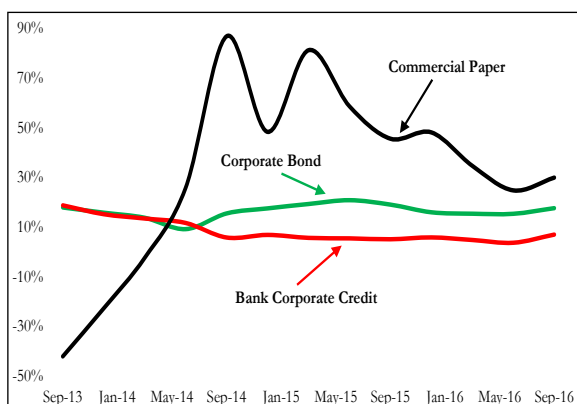


स्रोत : RBI. आधार दर सभी बैंकों की औसत है। सावधि जमा दर एक वर्ष से अधिक अवधि की जमाएं हैं।

विमुद्रीकरण के परिणाम स्वरूप अपने पास आए नकदी के प्रवाह में अप्रत्याशित वृद्धि के बाद ही बैंकों ने ऋणों पर ब्याज की दरों में कुछ महत्वपूर्ण कटौतियां प्रारंभ की हैं।

4.41 इस अन्तर में विस्तार ने बैंक व्यवस्था से जुड़े विमध्यस्थीकरण को बढ़ावा दिया है। इस विस्तार का अर्थ है कि अब निष्पादनहीन उधार लेने वालों को सब्सिडी देने के लिए निष्पादक जमाकर्ताओं और उधार लेने वालों पर 'कर' लगाया जा रहा है। विवश होकर अच्छे उधारकर्ता कहीं अन्य से ऋण पाने का प्रयास कर रहे हैं : अल्पकालिक आवश्यकता के लिए व्यापारिक पत्रक बाजार तथा दीर्घकालिक के लिए बांड बाजार के दरवाजे खटखटाए जा रहे हैं (रेखाचित्र 13)। इसे किसी रूप में एक वांछनीय कार्य भी माना जा सकता है, क्योंकि इससे देश के पूंजी बाजारों का विकास हो रहा है। किन्तु यदि यह विमध्यस्थीकरण चलता रहा तो उस कर का सारा भार MSMEs पर भी पड़ने लगेगा। उन्हें बांड बाजार में जाने की अनुमति नहीं होती (और उन्हें उधार दाता की आवश्यकता रहती है जो उनके प्रकल्पों का सही मूल्यांकन भी कर लें, ऐसा बैंक ही कर पाते हैं)। इस प्रवृत्ति से बैंकों की जोखिम और अधिक हो सकती है। उनके पास से अच्छे ऋणकर्ता पलायन कर जाएंगे और उनके पास अधिक जोखिम भरे मध्यम/छोटे उद्यमी ही बच रहेंगे।

चित्र 13: सांकेतिक कार्पोरेट बैंक क्रेडिट, कार्पोरेट बॉन्ड्स, और वाणिज्यिक पत्र में वृद्धि (प्रतिशत)



स्रोत: क्रेडिट स्यूएस

4.42 संक्षेप में कहें तो, कुछ वर्षों तक तो यह वित्तीयन युक्ति कारगर रही है, इसने महत्वपूर्ण दोहरी तुलनपत्र समस्या के बावजूद भारत को अपनी संवृद्धि दर को उच्च स्तर पर बनाए रखने में सहायता दी है। किन्तु अब यह युक्ति अपनी प्रभावोत्पादकता की सीमा पर पहुँच रही है। आठ वर्ष तक का समय दिए जाने के बाद भी उन कंपनियों के स्वास्थ्य में कोई सुधार होता नहीं दिखाई दे रहा। वस्तुतः बुरे ऋणों की समस्या की गंभीरता में कमी के लक्षण भी नहीं दिख रहे। इस अपेक्षा के विपरीत निगमों और बैंकों पर दबाव में वृद्धि ही हो रही है और इसके निवेश एवं साख प्रवाह पर प्रभाव स्पष्टतः मापनीय रूप धारण कर रहे हैं। यही नहीं, समष्टि स्तरीय उत्प्रेरण प्रदान करने के प्रयास भी अपर्याप्त सिद्ध हो रहे हैं : सार्वजनिक निवेश में वृद्धि से कहीं अधिक निजी निवेश की कटौती रही है। विमुद्रीकरण से प्राप्त हुई धन राशियां भी ऋण-जमा अंतर के प्रसार के कारण उद्यमियों तक नहीं पहुँच पाई। इन परिस्थितियों में यह अधिकाधिक स्पष्ट हो रहा है कि यह समस्या भारत के संवृद्धि पथ को ही विचलित कर दे उससे पहले इस ऋण समस्या का समाधान करना ही होगा।

III. क्या करना आवश्यक है?

4.43 संकटासन्न परिसंपदाओं की समस्या से जूझने के लिए पिछले कुछ वर्षों में रिजर्व बैंक ने कई प्रक्रियाएं प्रारंभ की हैं (देखें परिशिष्ट)। प्रारंभिक कदम तो फर्मों को ऋण चुकाने के लिए अधिक समय प्रदान करना था। किन्तु जब यह स्पष्ट हुआ कि संकटग्रस्त फर्मों की दशा तो और खराब हो रही है तो रिजर्व बैंक ने उनकी ऋणशोध क्षमता के प्रश्न से संबंधित प्रक्रियाओं का भी सूत्रपात किया है।

4.44 इनमें से तीन प्रक्रियाएं विशेषरूप से महत्वपूर्ण हैं। कुछ समय से रिजर्व बैंक निजी परिसंपदा पुनःनिर्माण कंपनियों (ARCs) की स्थापना पर बल दे रहा है। इसे आशा है कि ये कंपनियां व्यापारिक बैंकों के बुरे ऋण उनसे खरीद लेगी। इस प्रकार दक्षतापूर्ण 'श्रमविभाजन' होगा, बैंक अपने परंपरागत जमा लेने और उधार देने के कार्यों पर केन्द्रित रह सकेंगे और निगम ऋणों की पुनः रचना करने के लिए ARCs विशिष्ट कौशल संपन्न व्यक्तियों को दायित्व सौंप सकेंगी।

4.45 किन्तु इस युक्ति को बहुत सीमित सफलता मिली है। बहुत सी ARCs का गठन तो हुआ है, किन्तु इन्होंने समस्या के बहुत ही छोटे से हिस्से का समाधान किया है। ये 2014-15 और 2015-16 के खाता मूल्य पर मात्र 5 प्रतिशत निष्पादनहीन परिसंपदाओं को खरीद पाई है। समस्या यही है कि ARCs भी ऋणी निगमों से अधिक कुछ वसूल नहीं कर पा रही। अतः वे बैंकों को ही और निम्नतर कीमतें चुकाना चाहती हैं, किन्तु बैंक वे निम्न कीमतें स्वीकार नहीं कर पा रहे।

4.46 अतः अभी-अभी रिजर्व बैंक ने दो अन्य उपायों पर ध्यान दिया है : ये हैं बैंक आधारित कार्य विधियां। जून 2015 में युक्ति युक्त ऋण पुनःरचना (SDR) योजना प्रारंभ की गई। इसके अंतर्गत ऋणदाता ऋणी फर्मों का अधिग्रहण कर उन्हें किन्हीं अन्य उद्यमियों को बेच सकते हैं। अगले वर्ष दूसरी योजना आरंभ की गई। यह है : संकटासन्न परिसंपदाओं की धारणीय पुनःसंरचना योजना (S4A)। इसके अंतर्गत ऋणदाता आधी तक देनदारी माफ कर ऋणी निगमों की वित्तीय धारण क्षमता की पुनःस्थापना कर सकते हैं।

4.47 सिद्धांत रूप से ये योजनाएं मिलकर ऋणशोधन से जुड़ी समस्याओं के पूर्ण समाधान की विधि की रूपरेखा प्रदान कर सकती हैं। किन्तु इनकी सफलता बहुत सीमित रही है। मात्र दो दर्जन फर्मों ने SDR के अंतर्गत विचार विमर्श प्रारंभ किया है और केवल दो मामलों का निपटान दिसंबर 2016 तक हो पाया है। दूसरी विधि S4A ने भी केवल एक मामले का समाधान किया है।

4.48 इतनी धीमी प्रगति के कई कारण हैं। एक तो यही कि ये योजनाएं बहुत नई हैं और वित्तीय पुनःरचना पर वार्तालाप या सौदेबाजी में बहुत समय लगता है। किन्तु कहीं बड़ी समस्या तो यह है कि समाधान के लिए आवश्यक तत्व अभी पूरी तरह से उपलब्ध ही नहीं हैं :

- हानि को स्वीकार करना। AQR की स्थापना का लक्ष्य बैंकों को उनकी वस्तु स्थिति से अवगत कराना था। किन्तु बैंक तो उन ऋणों को निरंतर हरित किए जा रहे हैं। अभी तक अचिन्हित रहे संकटासन्न परिसंपदा अनुमानों से यही बात स्पष्ट हुई है।

- समन्वय। रिजर्व बैंक ने ऋणदाताओं को एक मंच 'संयुक्त ऋणदाता मंच' पर एकत्र होने को प्रोत्साहित कर रहा है। यहां 75 प्रतिशत ऋण राशियां दे चुके बैंक, जो कुल ऋणदाता बैंकों की संख्या का 60 प्रतिशत भी हों मिलकर निर्णय कर सकते हैं। किन्तु इन मंचों पर सहमति तक पहुँचना कठिन रहा है, विभिन्न बैंकों द्वारा प्रदत्त साख के अनुपात अलग-अलग हैं, उनके पूंजी आधार और संप्रेरणाओं में भी अंतर हैं। उदाहरण के लिए जिन बैंकों ने बहुत अधिक ऋण ऐसी कंपनियों को दिए हों वे हानि सहन करने को इतने इच्छुक नहीं होंगे। कई बार तो यह भी नहीं पता चलता कि कोई कंपनी हानि में चल रही है। उसे सरकार द्वारा प्रकल्प क्रियान्वयन में सरकारी अपूर्णताओं/विफलताओं के लिए क्षतिपूर्ति मिल रही होती है (जैसे कि भूमि अधिग्रहण में देरी, या फिर विद्युत दरों में समंजन आदि)। और इस क्षतिपूर्ति का निर्धारण एक कठिन एवं समय लगने वाला कार्य है; अनेक मामले तो अब न्यायपालिका के पास लंबित हैं।

- उपयुक्त संप्रेरणाएं। S4A ने यह समझ लिया है कि अनेक मामलों में अर्थक्षमता की पुनः स्थापना के लिए ऋणों में भारी कटौतियां आवश्यक होंगी। किन्तु सार्वजनिक बैंक इसे स्वीकार करने को तैयार नहीं है। आखिर ऋण माफ करने पर उन्हें क्या पुरस्कार मिलता है? बल्कि इसके विपरीत यहां तो दंडित होने की आशंका विद्यमान होती है। बड़े स्तर पर ऋण माफी सहज ही अन्वेषण एजेन्सियों का ध्यान आकर्षित कर लेती है। अतः बैंकों को एकमात्र संप्रेरणा ऋणों के भुगतान की अवधि को बढ़ाना है। यह समस्या को मात्र किसी अगली तिथि तक स्थगित कर देना ही है। इस समस्या के समाधान के लिए बैंक बोर्ड ब्यूरो (BBB) ने एक निगरानी समिति बनाई है, वह ऋण माफी प्रस्तावों की समीक्षा कर उनको प्रमाणित कर सकती है। किन्तु यह स्पष्ट नहीं है कि क्या यह बैंकों की संप्रेरणाएं भी परिवर्तित कर पाएगी।

- पूंजी। सरकार ने वर्ष 2018-19 तक अपनी इन्द्रधनुष योजना के अंतर्गत सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में रु.

70,000 करोड़ की अतिरिक्त पूंजी का संचार करने का निर्णय लिया है। किन्तु यह पर्याप्त नहीं होगी, अंतर्निहित रूप से ही इसमें अपर्याप्तता दिखाई दे रही है। यहां प्रमुखकर्ता-अधिकर्ता की समस्या विद्यमान है, वित्तीय उत्तरदायित्व तो सरकार नामक संस्था का है, किन्तु इसका निर्णय करने वाले अधिकर्ता बैंक हैं। यदि सरकार पहले से ही अधिक धनराशियों का वचन दे देती है तो बैंक बहुत उदारतापूर्वक ऋण माफी प्रदान करने लगेंगे। किन्तु यदि उन्हें पर्याप्त धन राशियां नहीं मिलीं तो वे कंपनियों को ऋणों में राहत दे ही नहीं पाएंगे।

4.49 संक्षेप में, समाधान पथ, बहुत ही साधारण से बुरे ऋणों वाले मामलों में भी, बहुत सी रूकावटों से भरा है। किन्तु, समस्या का अधिकांश भाग सामान्य से मामलों का नहीं है। संकटासन्न परिसंपदाएं तो बहुत कम ऋणियों के पास संकुलित हैं। केवल 50 कंपनियां ही IC1 की देनदारी के 71 प्रतिशत के लिए उत्तरदायी हैं। औसत रूप से इन्हें रू. 20000 करोड़ चुका है, दस कंपनियों की देनदारी तो रू. 40000 करोड़ प्रत्येक है। और अनेक दृढ़मूल हो चले कारणों से इन विराटकाय ऋणियों के मामलों का समाधान बहुत ही कठिन है।

- गंभीर अर्थक्षमता की समस्याएं : वर्तमान में तो बड़ी IC1 कंपनियों की अर्थक्षमता की पुनः स्थापना के लिए बड़े पैमाने पर ऋण माफी करनी पड़ेगी। तत्संबंधी राशियां तो प्रत्येक मामले में अलग-अलग होंगी और उसके निर्धारण के लिए उनके खातों का पूरी तरह से विश्लेषण करना होगा। किन्तु मोटेतौर पर यह आंकलन यहां हो सकता है कि उनके वर्तमान नकद प्रवाह पर ब्याज का भार घटाने के लिए ऋणों में कितनी कटौती आवश्यक है। सितंबर 2016 के अंत तक के आंकड़े सुझाते हैं कि उच्चतम संकटासन्न 100 ऋणियों में से 33 को आधे से कम ऋण माफी चाहिए। 10 के लिए

51-75 प्रतिशत और 57 को तो कम से कम 75 प्रतिशत माफी की जरूरत है।⁸

- गंभीर समन्वय विफलताएं : बड़े ऋणियों ने अनेक बैंक से ऋण पाए हैं, उनका किसी एक युक्ति पर सहमत होना जरूरी है। जब बड़ी-बड़ी राशियों का मामला हो तो यह सहमति कठिन हो जाती है।
- गंभीर संप्रेणात्मक समस्याएं : सार्वजनिक बैंक प्रबंधक बड़े ऋणियों की ऋण माफी को लेकर बहुत संवेदनशील हो जाते हैं। इस कार्य से वे केवल अन्वेषण एजेंसियों नहीं बल्कि आम जनता के भी निशाने पर आ जाते हैं। ये बैंकर तो प्रायः ऋणों को अंश पूंजी में बदलकर उन शेरों को बेचने का कदम भी नहीं उठा पाते, भले ही SDR नीति के अंतर्गत इस कदम को प्रोत्साहित किया गया हो और यही मूल्यमान को अधिकतम कर पाने का एकमात्र मार्ग बचा हो।
- अपर्याप्त पूंजी : बड़े ऋणियों की कर्ज माफी से तुरंत ही बैंकों की अपनी पूंजी के आधार कोष रिक्त प्रायः हो सकते हैं।

4.50 दूसरे शब्दों में बड़ी फर्मों के लिए ऋण माफी का रास्ता बाधाओं से भरा नहीं है, यह पूरी तरह बंद ही है।

4.51 तो क्या नया दीवालापन कानून कोई व्यवहारिक राह सुझा पाएगा? एक रूप में तो जहां फर्म की सेहत सुधारने के लिए बहुत विशाल स्तर पर उनकी देनदारियां माफ करने की जरूरत हो वहां उसे दीवालिया घोषित करना समझादारीपूर्ण हो सकता है। ये फर्म पहले से ही SDR और S4A व्यवस्थाओं के प्रयोग के लिए अनुप्रयुक्त हैं। समस्या यह है कि नया दीवालियापन कानून अभी लागू नहीं हो पाया है, और जब यह लागू होगा तो पहले इसके भागीदार प्रावधान का छोटे ऋणियों के मामले में प्रयोग करके देखना चाहेंगे। जब तक यह नई व्यवस्था अधिक बड़े और जटिल मामलों को सुलझाने को तैयार

⁸ ये गणनाएं बहुत सी सरलीकरण मान्यताओं के आधार पर की गई हैं। नकद प्रवाह का मापन ब्याज, कर, मूल्यहास और ऋण भुगतान पूर्व प्राप्तियों के आधार पर किया गया है (EBITDA); ऋणात्मक नकद प्रवाह वाली कंपनियां 75 प्रतिशत से अधिक माफी वाले समूह में चली जाती हैं। यह भी माना गया है कि ब्याज की देयता में कमी ऋण देयता में कमी के समानुपाती रहेगी। गणना की सबसे बड़ी मान्यता तो यह है कि भविष्य में नकद प्रवाह में कमी नहीं आएगी। कुछ मामलों में यह प्रवाह

हो पाएगी, तब तक तो बहुत अधिक समय व्यतीत हो जाएगा।

4.52 अन्य शब्दों में इस समय स्थिति यह है : दोहरी तुलनपत्र समस्या को सिर उठाए हुए 8 वर्ष बीत चुके हैं, पर कोई समाधान दिखाई नहीं दे रहा। संकटासन्न ऋणियों की वित्तीय स्थिति तेजी से बिगड़ रही है और सरकार तथा समाज की संभावित लागतों में भारी वृद्धि हो रही है। ये केवल वित्तीय लागतें नहीं हैं, इनके साथ गवाएं गए संवृद्धि के अवसर तथा भविष्य में संवृद्धि की संभावनाओं को लगने वाले आघातों की लागतें भी जोड़ी जानी चाहिए।

4.53 ये कठिनाइयां एक मौलिक प्रश्न उठा रही हैं। अधिकांश आर्थिक समस्याओं का श्रेष्ठतम समाधान बाजार आधारित प्रक्रियाओं द्वारा हो जाता है। वहां व्यापारिकता प्रेरित कर्तागण सरकार रचित रूपरेखा में रहते हुए काम करते हैं। किन्तु यहां तो ऐसी प्रक्रिया कार्य करती हुई नहीं दिखाई देती। कारण हैं वे संरोध और विकृत संप्रेरणएं, जिनका उन्मूलन बहुत कठिन सिद्ध हो रहा है।

4.54 इन सबसे यही संकेत मिल रहे हैं कि वर्तमान प्रक्रियाओं के प्रयोग द्वारा संकटासन्न परिसंपदा समस्या का समाधान नहीं हो पाएगा। वस्तुतः निकट भविष्य में आने वाली कोई अन्य विकेन्द्रित विधि भी इस कार्य में सफल होती प्रतीत नहीं हो रही। इनके स्थान पर एक बड़ी केन्द्रीकृत विधि या प्रक्रिया की ही आवश्यकता होगी।

4.55 एक संभव युक्ति सार्वजनिक क्षेत्र परिसंपदा पुनःप्रतिष्ठापन एजेंसी (PARA) हो सकती है, जिसे विशाल एवं जटिल मामलों को निपटाने का दायित्व दिया जा सके। यह विधि ऋण समाधान में आ रही अधिकांश बाधाओं का निवारण कर सकती है। इससे समन्वय की समस्या भी सुलभ जाएगी, क्योंकि सारे ऋण एक ही एजेंसी के पास सिमट जाएंगे। इसे निश्चित अवधि में अधिकतम संभव वसूली का आदेश तथा उसके अनुपालन के लिए उपयुक्त संप्रेणातंत्र के साथ गठित करना चाहिए। इस प्रकार ऋण समाधान का मामला बैंकों की पूंजी संबंधी चिंताओं से पृथक हो जाएगा। इन कारणों से ही अनेक देशों ने परिसंपदा पुनः प्रतिष्ठापन एजेंसियां अपनाई हैं। दोहरी तुलनपत्र समस्या से ग्रस्त रहे, पूर्वी

एशियाई देश तो इस कार्य में प्रमुख रहे हैं।

4.56 एक PARA कैसे कार्य करेगी? इसके कई प्रारूप हो सकते हैं, किन्तु मुख्य रूपरेखा तो स्पष्ट नहीं है। यह निर्दिष्ट ऋणों की लेनदारी बैंकों से खरीद लेगी (ये बड़ी ऋणग्रस्त संरचना उद्यमों, तथा इस्पात उद्योगों की देनदारियां हो सकती हैं)। फिर उनके समाधान का प्रयास प्रारंभ होगा, ऋणों को अंश पूंजी में परिवर्तित कर उस पूंजी को नीलामी द्वारा बेचा जा सकता है या फिर व्यावसायिक मूल्यांकन के आधार पर मूल्यमान अधिकतम करने की युक्ति अपनाते हुए ऋणों में माफी दी जा सकती है।

4.57 जब सरकारी बैंकों के खाते उन ऋणों से मुक्त हो जाएंगे, तब सरकार उन्हें पुनः पूंजीकृत कर उनके वित्तीय स्वास्थ्य को सुधार उन्हें अपने मानवीय एवं वित्तीय संसाधन नए ऋण देने के निर्णायक कार्य में लगाने योग्य बना देगी। इसी प्रकार अतिऋण ग्रस्त कंपनियां भी अपनी अर्थक्षमता की पुनःप्रतिष्ठा के बाद अपने उत्पाद-निर्माण कार्यों पर (वित्तीय दशा के स्थान पर) ध्यान केंद्रित कर सकेंगी। और अन्ततः, वे नए निवेश की योजनाएं भी बना पाएंगी।

4.58 किन्तु इस सबकी एक लागत भरी जाएगी : हानि को हानि के रूप में स्वीकार कर उसे चुकाना पड़ेगा। किन्तु यह लागत तो अपरिहार्य है। ऋण पहले ही दिए जा चुके हैं, हानि भी हो ही चुकी है और सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों की स्वामी सरकार है। अतः अधिकांश भार भी सरकार पर ही पड़ेगा। हां कंपनियों के शेयरधारी वर्ग को भी अंश पूंजी की हानि वहन करनी पड़ सकती है। अतः बात PARA की हो या किसी विकेन्द्रीत समाधान युक्ति की। यह तो प्रश्न ही नहीं है कि सरकार को नए दायित्व उठाने पड़ेंगे। प्रश्न यह है कि वर्तमान दायित्व भार को बुरे ऋणों की समस्या सुलझा कर न्यूनतम कैसे किया जाए। वह भी यथा संभव प्रभावी रूप से और यथाशीघ्र। PARA के गठन का यही ध्येय होगा।

4.59 किन्तु इस कार्य में बड़ी भारी पूंजी की आवश्यकता होगी। यह कोष कहां से आएगा? एक अंश तो सरकार द्वारा निर्गित निक्षेपों से एकत्र होगा। इससे सार्वजनिक ऋण भार में वृद्धि होगी किन्तु यदि PARA गठन से निष्पादनहीन परिसंपदाओं की समस्या

का समाधान हो गया तो वस्तुतः सरकार की वित्तीय स्थिति में सुधार ही होगा। इससे बुरे ऋणों की भरपाई हेतु बैंकों को दिए जाने वाली क्षतिपूर्ति की राशियों में यथेष्ट कमी आ पाएगी।

4.60 यदि PARA की रचना ऐसी हो कि निजी निवेशक इसकी अंश पूंजी में भागीदारी करने को प्रोत्साहित हों तो एक अंश पूंजी बाजार से भी जुटाया जा सकता है। साथ ही, यदि सरकार अपनी हिस्सेदारी को बेचने को तैयार हो तो पूंजी बाजार सरकारी बैंकों के पूंजी कोष को संवर्धित करने को भी तैयार हो सकता है।

4.61 पूंजी का तीसरा स्रोत भारतीय रिजर्व बैंक हो सकता है। इसकी प्रक्रिया तो सरल और सीधी है (देखें बॉक्स-2)। प्रभावीरूप से रिजर्व बैंक अपने पास मौजूद कुछ सरकारी निक्षेप सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों और PARA को अंतरित कर देगा। परिणाम स्वरूप रिजर्व बैंक की पूंजी कुछ कम होगी और सरकारी बैंकों तथा PARA की पूंजी में वृद्धि हो जाएगी। मौद्रिक नीति के लिए इसके कोई निहित अर्थ या परिणाम नहीं होंगे, क्योंकि इस अन्तरण से नई मुद्रा का सृजन नहीं होगा।

4.62 यह भी सत्य है कि PARA की स्थापना सभी रोगों की दवा नहीं है। वास्तव में सरकार संचालित परिसंपदा पुनःप्रतिष्ठान एजेंसियों को लेकर अनुभव सदैव सकारात्मक नहीं रहे हैं। उन एजेंसियों को तीन प्रकार की समस्याओं को लेकर कठिनाइयाँ आई हैं। अतः उनका निदान-निपटान ही यह सुनिश्चित कर पाएगा कि हमारी सुझाई PARA के होने पर वह अपने लक्ष्यों में सफल हो पाए।

4.63 सबसे पहले तो बैंकिंग क्षेत्र में अभी तक हो चुकी हानि को स्वीकार करने और उस समस्या का सामना करने के राजनीतिक परिणामों को झेलने के लिए तत्परता चाहिए। ऋण माफी पर पक्षपात के आरोप अवश्य लगेंगे, कंपनियों का अधिग्रहण कर उनकी बिक्री को अनावश्यक रूप से सरकारी जोरजबरदस्ती का नाम दिया जाएगा। इन सब आरोपों के विरुद्ध एक मात्र बचाव यही होगा कि PARA एक पूर्णरूप से व्यवसायिक संस्था हो, जिसके पास वसूल किए जा रहे मूल्यमान को अधिकतम

करने की योजना हो और वह उसे अधिकतम करती हुए दिखाई भी पड़नी चाहिए।

4.64 दूसरे, PARA को राजनीतिक नहीं व्यापारिक नियमों का पालन करना होगा। इसलिए उसे एक ऐसा स्वतंत्र संगठन बनना होगा, जिसमें बैंक कार्य विशेषज्ञ ही काम करते हों। इसे एक उचित रूप से सीमित अवधि में अधिकतम मूल्यांकन उगाहने का स्पष्ट निर्देश होना चाहिए। इन उद्देश्यों को पाने का एक मात्र मार्ग GST छमजूवता जैसी संरचना करनी होगी जो सार्वजनिक क्षेत्र की छत्रछाया में तो मानी जाए, किन्तु जिसमें सरकार की हिस्सेदारी 49 प्रतिशत ही रहे।

4.65 तीसरा प्रश्न कीमत निर्धारण का है। यदि ऋणों को बढ़ाचढ़ा कर अन्तरित किया गया तो वास्तव में बैंक अपने घाटे को पुनः प्रतिष्ठापन एजेंसी को अन्तरित कर जाएंगे। परिणाम स्वरूप निजी बैंक इस में भागीदार नहीं हो पाएंगे। एक बार फिर से समन्वय का प्रश्न उठ खड़ा होगा। निजी पूंजी इस एजेंसी में निवेश नहीं करना चाहेगी, क्योंकि यह PARA तो घाटे में ही चलेगी। इस समस्या का एक हल है : अन्तरण बाजार कीमतों पर हो। किन्तु, संकटासन्न ऋणों की बाजार कीमत का निर्धारण सहज नहीं होता, इसमें समय भी बहुत लग सकता है।

4.66 ये तीनों समस्याएं बहुत विशालकाय हैं। यही कारण है कि पहले अन्य विधियों का परीक्षण किया गया है। किन्तु वे अन्य विधियाँ कारगर नहीं रही हैं। वर्षों बीत गए हैं और लागतें निरंतर वृद्धिशील हैं। विद्वान अर्थशास्त्री मिस्टर होल्मस की बात को दोहराएँ तो, “जब आप एक बार असंभव को पूरा कर लें तो बाद में जो कुछ बच रहता है, वह चाहे जितना भी कठिन हो वही समाधान होता है”।

IV. निष्कर्ष

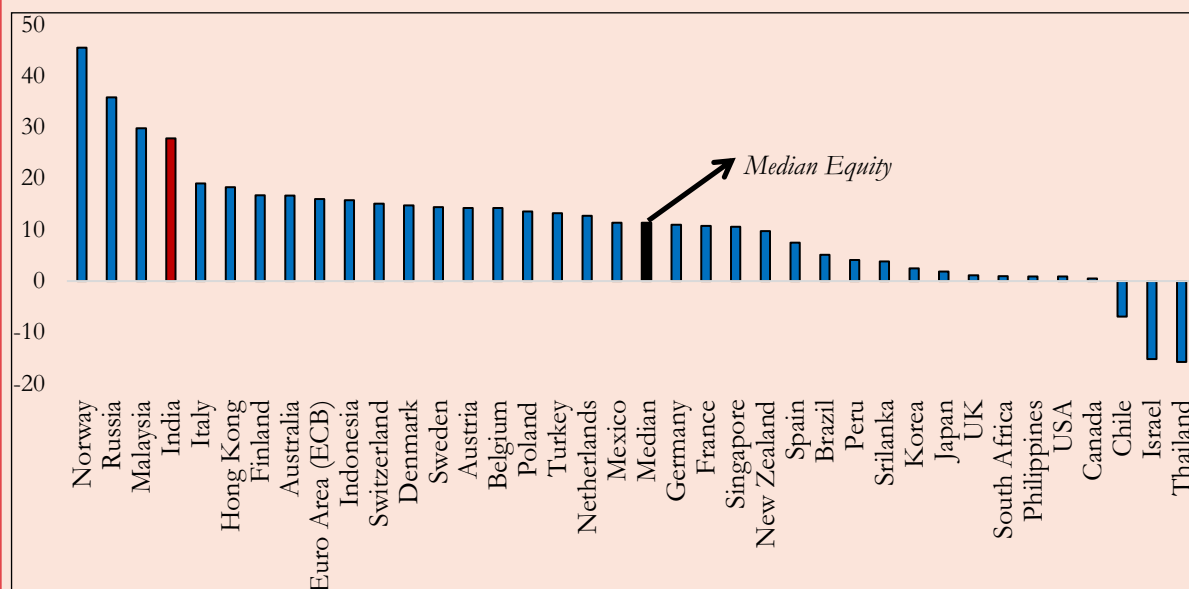
4.67 आर्थिक समीक्षा, 2015-16 ने आग्रहपूर्वक कहा था कि संकटासन्न परिसंपदाओं की समस्या के समाधान के लिए रू. 4 की आवश्यकता होगी। ये हैं सुधार Reforms; स्वीकृति Recognition; पुनः पूंजीकरण Recapitalization; और समाधान Resolution। एक वर्ष में (इस दिशा) में कितनी प्रगति हो पाई है?

बॉक्स 2. भारतीय रिजर्व बैंक की अतिरिक्त पूंजी

पिछले वर्ष की आर्थिक समीक्षा में रिजर्व बैंक में सरकार की अतिरिक्त पूंजी का प्रश्न उठाया गया था। इस वर्ष विमुद्रीकरण ने उस प्रश्न को और अधिक महत्वपूर्ण बना दिया है।

निम्न रेखाचित्र में पिछले वर्ष के आंकलन का नवीनीकरण करते हुए रिजर्व बैंक के पास पूंजी का स्तर दिखाया गया है। विमुद्रीकरण के कारण अनायास प्राप्तियों को गणना में स्थान नहीं देने पर भी रिजर्व बैंक एक प्रमुख बहिष्सायी के रूप में उभर रहा है।

रेखाचित्र : केन्द्रीय बैंक के तुलनपत्र में अंशपूंजी का प्रतिशत भाग



स्रोत : विभिन्न देशों के केन्द्रीय बैंकों के नवीनतम आंकड़े। भारत के अनुमान में विमुद्रीकरण से अनायास प्राप्ति का मान शून्य ही लगाया गया है।

ऐसी कोई विशेष वजह नहीं है जिसके चलते यह अतिरिक्त पूंजी भारतीय रिजर्व बैंक के पास रखी जानी चाहिए। मौजूदा स्तरों पर भी, भारतीय रिजर्व बैंक पहले से ही अपवादात्मक रूप से अत्यधिक पूंजी वाला बैंक है। वस्तुतः, यह विश्व में सर्वाधिक उच्च पूंजीकृत केन्द्रीय बैंक है। अतः, यह इस पूंजी को अन्य तरीकों में पुनर्नियोजित करने लिए अत्यधिक उत्पादक प्रतीत होगी।

कोई कारण नहीं होता कि सरकार अपनी अतिरिक्त पूंजी रिजर्व बैंक के पास ही रखे। वर्तमान स्तर पर भी रिजर्व बैंक अत्यधिक पूंजीकृत है। वास्तव में यह विश्व के सर्वाधिक पूंजीकृत केन्द्रीय बैंकों की श्रेणी में है। अतः लगता है कि इस पूंजी का कहीं अन्य प्रयोग कर लेना अधिक उत्पादक सिद्ध होगा।

मान लें कि रिजर्व बैंक ₹. 4 लाख करोड़ की पूंजी केन्द्र सरकार को लौटा देता है, तो फिर इसका सरकार क्या प्रयोग कर सकती है? इसके कई अच्छे कार्यों में प्रयोग संभव हैं।

सबसे प्रथम तो बैंक का पुनःपूंजीकरण या फिर एक सार्वजनिक क्षेत्रीय परिसंपदा पुनः प्रतिष्ठापन एजेंसी का पूंजीकरण हो सकता है। दूसरे, ऋण चुकाकर सरकार सबल सार्वजनिक क्षेत्रीय राजकोष अवस्था के प्रति अपनी प्रतिबद्धता प्रदर्शित कर सकती है। यहां मुख्य ध्यान यही रखना चाहिए कि विमुद्रीकरण सहित रिजर्व बैंक के पास पूंजी एक तुलनपत्र की रकम में वृद्धि/कमी है, यह अतिरिक्त आय नहीं है। अतः इसके प्रयोजन का स्वरूप भी तुलनपत्रीय होना चाहिए। इस बात पर पुनः आग्रह किया जा रहा है कि इस अतिरिक्त पूंजी के प्रयोग की युक्ति द्वारा किसी भी अन्य नियम/कानून के उल्लंघन या उसकी अवहेना का संकेत नहीं मिलना चाहिए। इसे रिजर्व बैंक की पूर्ण सहमति के साथ किया जाना चाहिए। उसकी स्वायत्तता और विश्वस्तता पर कोई आँच नहीं आनी चाहिए।

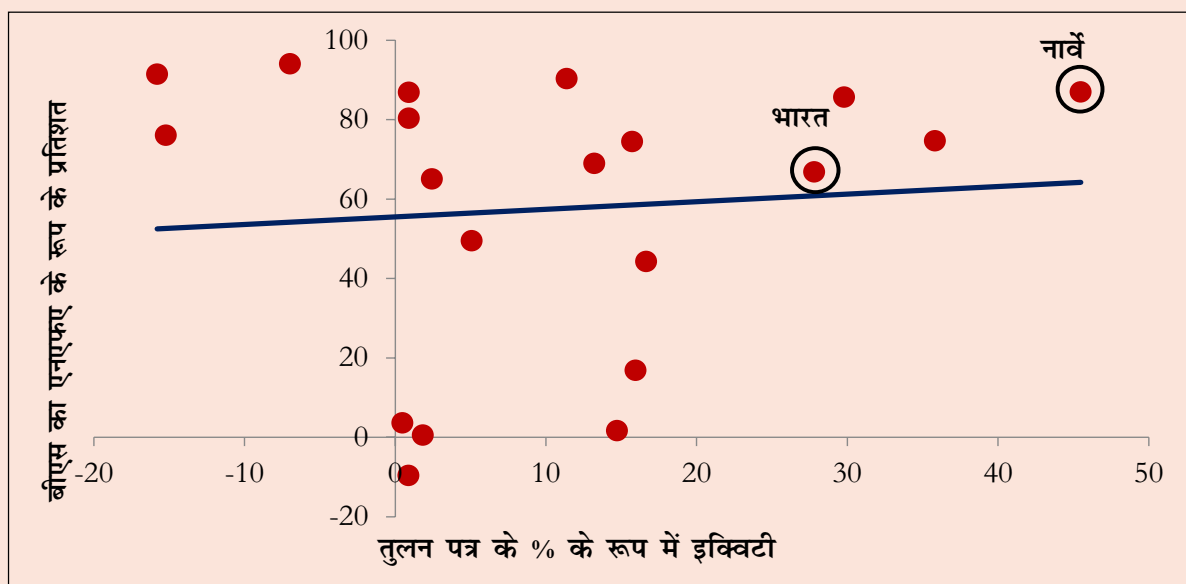
ऐसी युक्ति अपनाने के विरुद्ध संभव आर्थिक आपत्तियां क्या हो सकती हैं?

(क) पहला प्रश्न तो यही है कि क्या इस प्रकार पूंजी में कमी के बाद रिजर्व बैंक के पास किसी धक्के को सह सकने योग्य अवरोधक बचेंगे? रिजर्व बैंक की परिसंपदा का बहुत बड़ा अंश (70 प्रतिशत) तो निवल विदेशी संपदाओं (NFA) के रूप में है। इस कारण भी कुछ विशेषज्ञ उच्च अंश पूंजी/संपदा अनुपात पर बल देते हैं। एक तर्क है कि NFA का सकल परिसंपदा से अनुपात जितना उच्च होता

है रिजर्व बैंक उतना ही विनिमय दर में उच्चावचन का सामना करने में दुर्बलताग्रस्त हो सकता है। नॉर्वे के नोगेस बैंक का NFA सकल संपदा अनुपात 8.6 प्रतिशत है और यह अंश पूंजी का परिसंपदाओं के साथ अनुपात भी 45 प्रतिशत पर बनाए रखता है। यह भारत की अपेक्षा बहुत अधिक है।

क्या सचमुच किसी सेंट्रल बैंक के NFA और अंश पूंजीधारिता में सकारात्मक सह संबंध होता है? इस विचार के सत्यापन के लिए विभिन्न देशों के NFA/सकल संपदा अनुपात के आंकड़ों को अंशपूंजी/संपदा अनुपात के अनुसार अंकित किया गया है। इन दो अनुपातों के बीच सहसंबंध का मान मात्र 0.09 आंकलित हो पा रहा है। इसे तो समस्तरीय आंकड़ों में आ सकने वाली सामान्यसी विकृति माना जा सकता है। अतः यह कहना उचित नहीं होगा कि NFA का उच्च स्तर अधिक पूंजीधारिता के लिए विवश करता है।

रेखाचित्र : परिसंपदाएं और अंश पूंजी



स्रोत : विभिन्न देशों के केन्द्रीय बैंक

(ख) पूंजीगत हानि की आशंका

किन्तु वास्तव में निर्णायक प्रश्न तो यह है : विनिमय दर में कैसे, किस आकार प्रकार के परिवर्तन रिजर्व बैंक की पूंजी की अवस्था को दुर्बल बना सकते हैं?

ध्यान देने की पहली बात तो यह है कि रूपए के मूल्यमान में सुधार होने पर विदेशी मुद्रा संसाधनों का अवमूल्यन हो जाएगा। अतः हम यह मानकर कि 4 लाख करोड़ रूपयों की पूंजी का अन्तरण किया जा रहा है, गणना करने का प्रयास कर रहे हैं कि रूपए की विनिमय दर में कितना सुधार रिजर्व बैंक के विदेशी मुद्रा संसाधनों में 4 लाख करोड़ रूपयों का अवमूल्य कर सकता है। यह 16.3 प्रतिशत है। रिजर्व बैंक द्वारा आंकलित व्यापक आधार वाली वास्तविक प्रभावी विनिमय दर (REER) के सूचक को 135.8 तक ऊपर उठना होगा।

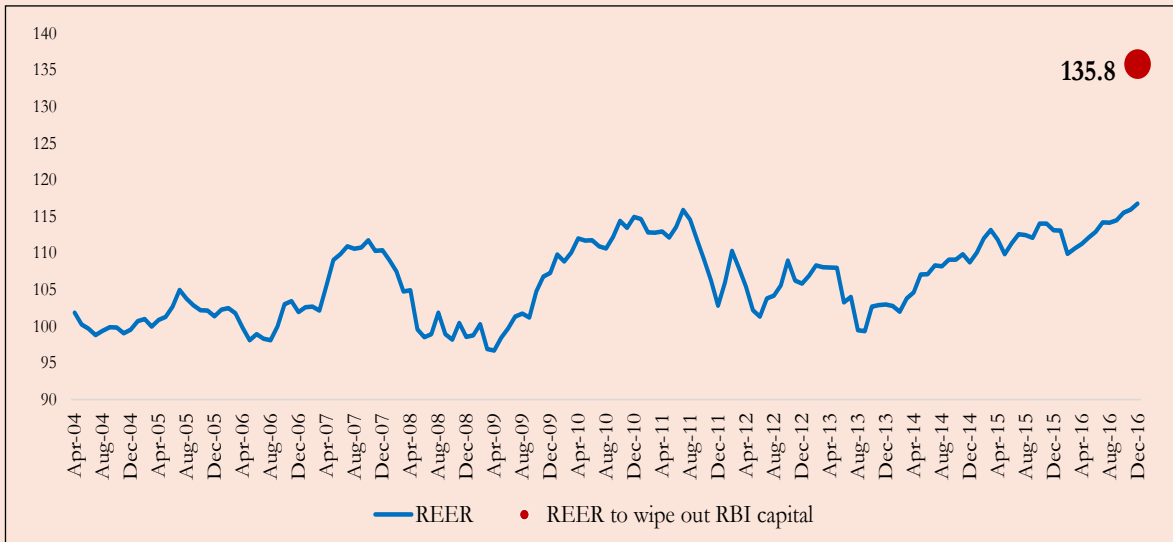
गणना का यह आधार बहुत सरल है : 4 लाख करोड़ रूपयों की राशि विदेशी मुद्रा कोष का मात्र 16.3 प्रतिशत है (जनवरी 13, 2017 की विनिमय दर के अनुसार)। अतः इस स्तर की तुलना में रूपए की दर में 16.3 प्रतिशत का सुधार रिजर्व बैंक की पूंजी को समाप्त कर सकता है। यह विनिमय दर सुधार अगले चित्र में प्रदर्शित REER स्तर के समान होगा। रूपए की दर में इस सुधार से प्रतिस्पर्धी स्तर में इतनी भारी गिरावट आ जाएगी जितनी पिछले 12 वर्षों से कभी अनुभव नहीं की गई। विनिर्माण उद्योग तो पूरी तरह से नष्ट हो जाएगा। अतः स्पष्ट है कि इस प्रकार की पूंजीगत हानि कभी भारतीय रिजर्व बैंक पर थौपी नहीं जाएगी।

(ग) हानि से बचने का संभावना

किन्तु क्या रिजर्व बैंक न चाहते हुए भी इस प्रकार रूपए की विनिमय दर में सुधार को रोक पाएगा? उत्तर है हां। केन्द्रीय बैंक की कार्य प्रणाली में एक मूलभूत असम्मिति होती है। उनकी विदेशी मुद्रा की आपूर्ति सीमित होती है, किन्तु आन्तरिक मुद्रा की आपूर्ति असीमित रहती है। अतः यदि रूपए की दर में सुधार को रोकना हो तो रिजर्व बैंक रूपयों के बदले डालर खरीदना प्रारंभ कर सकता है। किन्तु यदि रूपए की दर गिर रही हो तो फिर रिजर्व बैंक को उसे रोकने में हस्तक्षेप करने की क्षमता सीमित हो जाती है। वह उसी सीमा तक बाजार से रूपया खरीद सकता है, जितनी विदेशी मुद्रा उसके पास होती है। अतः, दूसरे शब्दों में, रिजर्व बैंक के पास उसकी पूंजी पर भीषण आघात करने में सक्षम बड़े पुनःमूल्यांकन को रोकने की क्षमता और संप्रेरणा, दोनों विद्यमान हैं।⁹

⁹ रिजर्व बैंक के तुलनपत्र को ब्याज दर परिवर्तन से भी धक्का लग सकता है। यदि दर में वृद्धि होती है तो इसके पास मौजूद सरकारी बाँड भंडार का मूल्यांकन गिर जाता है। किन्तु इसकी परिसंपदा रचना के कारण ब्याज दर वाली जोखिम रिजर्व बैंक के लिए कम महत्वपूर्ण होती है। दूसरे, यह जोखिम विनिमय दर जोखिम से विपरीत दिशा में होती है।

रेखाचित्र : REER द्वारा मापित स्पर्धाशीलता



स्रोत : RBI 36 करेंसी REER मौद्रिक प्रभावी विनिमय दर का आंतरिक एवं विदेशी कीमतों के अनुपात द्वारा समंजन करने से प्राप्त होता है।

एक अंतिम चिन्ता : मान लें कि इस अतिरिक्त पूंजी का बैंकों के पुनःपूंजीकरण में प्रयोग किया जाता है। तो क्या इससे नियमनकर्ता (रिजर्व बैंक) नियमनाधीन निकायों (व्यापारिक बैंकों) में हिस्सेदार नहीं बन जाएगा? वस्तुतः इसका परिणाम सरकार द्वारा अपने तुलनपत्र की रचना में परिवर्तन होगा, वह अपनी 'अंश पूंजी' रिजर्व बैंक से निकालकर व्यापारिक बैंकों में उसका 'निवेश' कर रही होगी। व्यवसायिक बैंकों में रिजर्व बैंक की पूंजी धारिता नहीं होगी। इस कदम के मौद्रिक नीति के लिए भी कोई निहित प्रभाव नहीं होंगे।

इसके विषय में विचार करना इसे दो चरणों में देखने के माध्यम से आसान हो जाता है। पहले चरण में रिजर्व बैंक (परिसंपदा पक्ष पर) सरकार को सरकारी निक्षेपों पर (भारी) लाभांश प्रदान करता है और उस क्रम में (देयता पक्ष पर) उसकी पूंजी में कमी हो जाती है। दूसरे चरण में सरकार नए ऋण पत्र जारी कर बैंकों का पूंजीकरण करती है। अतः इस प्रकार सरकारी बाँड, सामान्य रूप में रिजर्व बैंक से निकलकर सरकारी व्यावसायिक बैंकों के पास पहुँच जाते हैं। इसी प्रक्रिया में पूंजी का अन्तरण हो जाता है। और कुछ नहीं बदलेगा, विशेषरूप से मुद्रा की आपूर्ति और सरकार की अंशपूंजी धारिता अप्रभावित रहेगी।

(घ) अंतर्राष्ट्रीय उद्धरण

और अन्त में हमारे पास बड़े महत्वपूर्ण उदाहरण है, जहां विदेशों में सरकारों ने केन्द्रीय बैंक में अपनी अंशपूंजी का अपने अन्य कार्यों के लिए प्रयोग किया है।

- वर्ष 2015¹⁰ : संयुक्त राज्य ने अपने पूंजीकोष से परिवहन प्रकल्पों के लिए \$19 बिलियन की अतिरिक्त पूंजी प्रदान की थी।
- वर्ष 2004 : जर्मनी के केन्द्रीय बैंक ने अपने पुराने 'मार्क' भंडार का समापन कर इस आय को लाभ-हानि खाते में चढ़ा लिया था, इस बात की कोई संभावना नहीं थी कि इन राशियों के बदले कभी यूरो मिल पाएंगे।

2010 में, इजरायल बैंक ने वित्तीय पत्रकों में ILS 220 मिलियन की वृद्धि दर्ज कर ली थी (उस समय यह \$62 मिलियन के समान थी। यह नोटों के घोषित मूल्य का योगफल था जो नोट बदली की तिथि तक उसके पास लौटाए नहीं गए थे और सामान्य लेनदेन के लिए अमान्य हो गए थे।

पिछले कुछ वर्षों के अनुभव ने समस्याएं उत्पन्न होने पर बैंकिंग व्यवस्था में जनमानस का विश्वास बनाए रखने में इस क्षेत्र में सार्वजनिक बैंकों के वर्चस्व का सर्वाधिक महत्व बार-बार सिद्ध हुआ है। किन्तु, इस व्यवस्था की सबसे बड़ी त्रुटियां भी, समस्याओं का पूरी तरह समाधान करने में अरुचि तथा उन समस्याओं को पैदा होने के अवसर प्रदान करने के रूप में स्पष्ट हुई है। यदि दो अंकों की संख्या में NPA सरकारी बैंकों में कभी-कभार हो गए होते तो संभवतः इस बात का कोई महत्व नहीं होता। किन्तु यहां तो एक दशक में दूसरी बार उनके निवेश पत्रक भंडार का इतना बड़ा भाग निष्पादनहीन हो गया है। अतः यदि कुछ मूलभूत सुधार नहीं किए गए तो यह समस्या बार-बार सिर उठाती रहेगी।

¹⁰ See <https://www.bloomberg.com/news/articles/2015-12-01/fed-surplus-tapped-in-highway-bill-as-banks-get-dividend-break>.

4.68 हम उस क्षेत्र से चर्चा का प्रारंभ कर रहे हैं, जिसमें प्रगति सबसे कम रही है : यह प्रथम R अर्थात् सुधार का स्तर है।

4.69 वस्तुतः एक बार दोहरी तुलनपत्र समस्या का समाधान होने के बाद भी नैतिक द्वन्द्व की समस्याएं मत्वपूर्ण रहेंगी। नई-नई साफ सुथरी तुलनपत्र अवस्था से उत्साहित होकर बैंकों के प्रबंधक पिछले घटनाचक्र के सबक को भुलाकर फिर से मुक्त हस्त होकर ऋण देना प्रारंभ कर सकते हैं। इस पक्ष पर केंद्रित संरचनात्मक सुधारों के कई रूपभेद हो सकते हैं, किन्तु हमारा आग्रह है कि सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में सरकार का स्वामित्व में बहुमत भी ऐसा पक्ष है, जिस पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

4.70 अब उस ओर चलते हैं जहां सबसे अधिक प्रगति हुई है। यह दूसरा R अर्थात् स्वीकृति का पक्ष है। वर्षों तक 'और समय देने' की युक्ति का इस आशा में अनुसरण किया गया है कि धीरे-धीरे संकटासनन परिसंपदाएं स्वमेव ही संकट से उबर आएंगी। किन्तु अब जाकर बैंकों को यह स्पष्ट अनुभूति हुई है कि ऋणियों की वित्तीय दशा इस सीमा तक बिगड़ चुकी है कि उनमें से बहुत से कभी भी 'स्वस्थ' नहीं हो पाएंगे। इसलिए रिजर्व बैंक द्वारा परिसंपदा गुणवत्ता समीक्षा के बाद बैंक अब ऋणों की अधिकाधिक संख्या को 'निष्पादनहीन' स्वीकार करने लगे हैं।

4.71 NPAs के उच्च स्तर की स्वीकारोक्ति के साथ-साथ उसके लिए और उच्च प्रावधान करने की विवशता भी जुड़ी है। इसके कारण अब बैंकों का पूंजी आधार सिकुड़ने लगा है। परिणाम स्वरूप बैंकों के पुनः पूंजीकरण, तीसरे R, की आवश्यकता होगी। सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के लिए तो यह कोष सरकार से ही प्राप्त होंगे। यहां तक तो स्वचालित प्रायः है। किन्तु यह पुनःपूंजीकरण, भले ही जन संवाद में इसे कितना ही महत्व मिल रहा हो, इस समय का तकाजा नहीं है। किसी भी रूप में, मुख्य तकाजा तो नहीं ही है।

4.72 सही तकाजा तो चौथा R, समाधान है। पुनः पूंजीकरण के बाद भी सरकारी बैंक तब तक नए ऋण नहीं दे पाएंगे जब तक उन्हें यह निश्चित रूप से पता

नहीं चल जाता कि पुराने ऋणों के कारोबार में उन्हें कितना घाटा उठाना पड़ा है। बड़े, वर्तमान संकटग्रस्त ऋणी भी तब तक नए निवेश नहीं कर पाएंगे, जब तक उन्हें अपनी वित्तीय स्थिति वास्तव में सुधर जाने का विश्वास नहीं हो जाए। जब तक ये दोनों कार्य संपन्न नहीं होते, आर्थिक संवृद्धि तो संशयापन्न ही रहेगी।

4.73 तो प्रश्न यही है कि समाधान प्रक्रिया को किस प्रकार तेज किया जाए। भारत में वैश्विक वित्तीय संकट के आठ वर्ष बाद भी इस दिशा में शायद ही कुछ प्रगति हुई है। जबकि 1990 के दशक में संकट के बाद मात्र 2 वर्षों में पूर्वी एशिया के देशों ने अधिकतर बड़े मामलों को निपटा लिया था। एक कारण यह भी था कि वे देश बहुत अधिक गहन दबाव में थे : वे संकट में फंसे थे, जबकि भारत तो निरंतर तीव्र दर पर संवृद्धि कर रहा है।

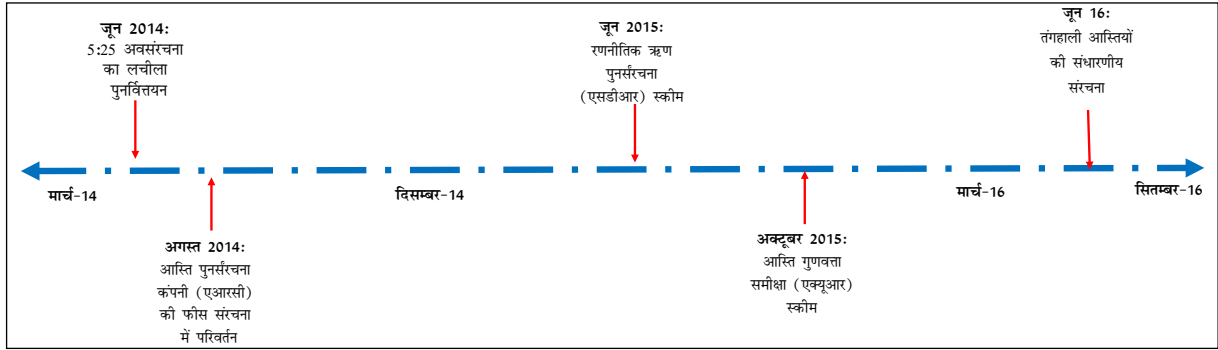
4.74 किन्तु पूर्वी एशियाई देशों के इतनी तेजी से ऋण समस्या का समाधान कर पाने का एक अन्य महत्वपूर्ण कारण भी था : उन्होंने कहीं अधिक दक्षतापूर्ण प्रक्रिया अपनाई थी। भारत एक विकेंद्रित विधि का पालन कर रहा है। इसमें बैंक अकेले-अकेले अपने स्तर पर ऋण पुनःरचना के निर्णय कर रहे हैं। यह अनेक संरोधों और विकृतिपूर्ण संप्रेरणों से भरा मार्ग है। परिणामतः उन्होंने बार-बार समाधान को स्थगित करने का ही चयन किया है। इनके विपरीत पूर्वी एशिया के देशों में केन्द्रीकृत समाधान युक्ति अपनाई गई थी और वहां सार्वजनिक परिसंपदा पुनःप्रतिष्ठापन कंपनियों के माध्यम से ऋण समस्याओं का त्वरित समाधान संभव हो गया था। संभवतः समय आ गया है कि भारत भी उसी कार्यविधि को अपनाने का निर्णय कर ले।

संदर्भ

1. Dell'Araccia, Giovanni, Deniz Igan, Luc Laeven, & Hui Tong, with Bas Bakker & Jérôme Vandenbussche, (2012), "Policies for Macroeconomic Stability: How to Deal with Credit Booms" *IMF Staff Discussion Note SDN/12/06* (Washington, DC: International Monetary Fund).

पिछले तीन वर्षों में रिजर्व बैंक ने संकटासन्न परिसंपदा समस्या के समाधान में सहायता के लिए कई योजनाएं लागू की हैं। हम यहां उनका एक संक्षिप्त दृश्यांकन प्रस्तुत कर रहे हैं।

रेखाचित्र : रिजर्व बैंक के नीतिगत कदमों का कालानुक्रम



5/25 संरचना पुनःवित्तीयन योजना : इस योजना ने संरचना एवं 8 अतिमहत्वपूर्ण उद्योगों में संकटासन्न परिसंपदाओं के पुनःप्रतिष्ठापन के लिए अधिक अवधि प्रदान की। ऋण देने वालों से कहा गया कि वापसी की अवधि 25 वर्ष तक बढ़ा दो, प्रत्येक 5वें वर्ष ब्याज की दर में भी परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन करो। इस प्रकार ऋण की अवधि इन प्रकल्पों की दीर्घ प्रारंभिक अवधि के अधिक अनुरूप हो जाएगी। इस योजना का लक्ष्य उधारकर्ताओं की साख और तरलता को सुधारना था। साथ ही बैंक इनको दिए गए उधार को भी अपने मानक ऋण मानकर इनकी भरपाई के प्रावधान की लागत से बच सकते थे। किन्तु ऋण वापसी की अवधि का एक परिणाम यह भी रहा : कंपनियों को कुल मिलाकर अधिक राशियां ब्याज के रूप में चुकानी पड़ गईं। ये उन्हें कठिन लगा और बैंक और अधिक ऋण देने को बाध्य होते गए (पुराने ऋण सदा हरित होते गए)। इसने तो अंततः प्रारंभिक समस्या को और गंभीर बना दिया है।

निजी परिसंपदा पुनःप्रतिष्ठापन कंपनियां (ARCs) : इन ARCs से भारत को SARFAESI अधिनियम, 2002 के अंतर्गत परिचित कराया गया। आशा थी कि ऋण समस्या के समाधान की विशेषज्ञ होने के नाते ये बैंकों को इस दायित्व से मुक्त कर देंगी। किन्तु इन ARCs को भी उन परिसंपदाओं के झंझट सुलझाने में कठिनाइयां आ रही हैं जो इन्होंने खरीद ली थी। अतः अब तो वे ऋणों को बहुत कम दामों पर खरीदने को तैयार हो रही है। किन्तु, परिणाम स्वरूप अब बैंक उन्हें बड़े पैमाने पर ऋण बेचने को उत्सुक नहीं है। फिर, 2014 में ARCs द्वारा उगाही जाने वाली शुल्क संरचना में भी बदलाव कर यह आवश्यक कर दिया गया कि ARCs तय कीमत का एक बड़ा हिस्सा पहले ही नकद चुकाएंगी। उसके बाद तो इन्हें बिक्री का क्रम बूंद-बूंद भर रह गया है। वर्ष 2014-15 और 2015-16 की अवधि में खाता मूल्यों की बात करें तो मात्र 5 प्रतिशत निष्पादनहीन परिसंपदाएं इन्हें बेची गई थी।

युक्तियुक्त ऋण पुनःरचना (SDR) : रिजर्व बैंक ने जून 2015 में बैंकों को ऋणी कंपनियों को दिए गए उधार को उन कंपनियों की अंश पूंजी में बदल डालने का एक अवसर दिया ताकि वे 51 प्रतिशत अंश पूंजी के मालिक बनकर उन कंपनियों को ही किन्हीं अन्य पक्षों को उच्चतम बोली पर बेच सकें। हां वर्तमान शेर धारियों की सहमति आवश्यक थी (यह कार्य उन कंपनियों के संदर्भ में किया जाना था जिनकी परिसंपदाओं की पुनःरचना की गई थी किन्तु वे उक्त पुनःरचना की शर्तों को पूरा नहीं कर पाई थी)। इस कार्य के लिए 18 महीने का समय दिया गया था और इस अविधि में ऋणों को निष्पादक माना जाता था। किन्तु दिसंबर 2016 तक केवल दो कंपनियों को इस प्रावधान के अंतर्गत बेचा जा सका था। कारण यही था कि कंपनियों के ऋण का एक अंश ही पूंजी में परिवर्तित हुआ था और परिणाम स्वरूप वे वित्तीय रूप से अर्थक्षमताहीन ही बनी रही।

परिसंपदा गुणवत्ता समीक्षा (AQR) : बुरे ऋणों की समस्या के समाधान के लिए उनकी सटीक पहचान करना आवश्यक होता है। अतः रिजर्व बैंक ने AQR पर आग्रह किया ताकि यह तय हो सके कि बैंक अपने दिए गए ऋणों का आकलन/वर्गीकरण रिजर्व बैंक द्वारा निर्दिष्ट ऋण वर्गीकरण नियमों के अनुसार ही कर रहे थे या नहीं। उक्त नियमों से प्रत्येक विचलन को मार्च 2016 तक सुधारा जाना था।

संकटासन्न परिसंपदाओं की धारणीय पुनःसंरचना : जून 2016 में प्रारंभ इस व्यवस्था के अंतर्गत बैंकों द्वारा नियुक्त की गई कोई स्वतंत्र एजेंसी यह निश्चित करने वाली थी कि किसी कंपनी के संकटासन्न ऋणों का कितना अंश धारणीय था। शेष (अधारणीय) भाग को अंश पूंजी और वरीयता पूंजी में परिवर्तित किया जाना था। SDR व्यवस्था के विपरीत इसमें कंपनी के स्वामित्व में कोई परिवर्तन नहीं होना था।